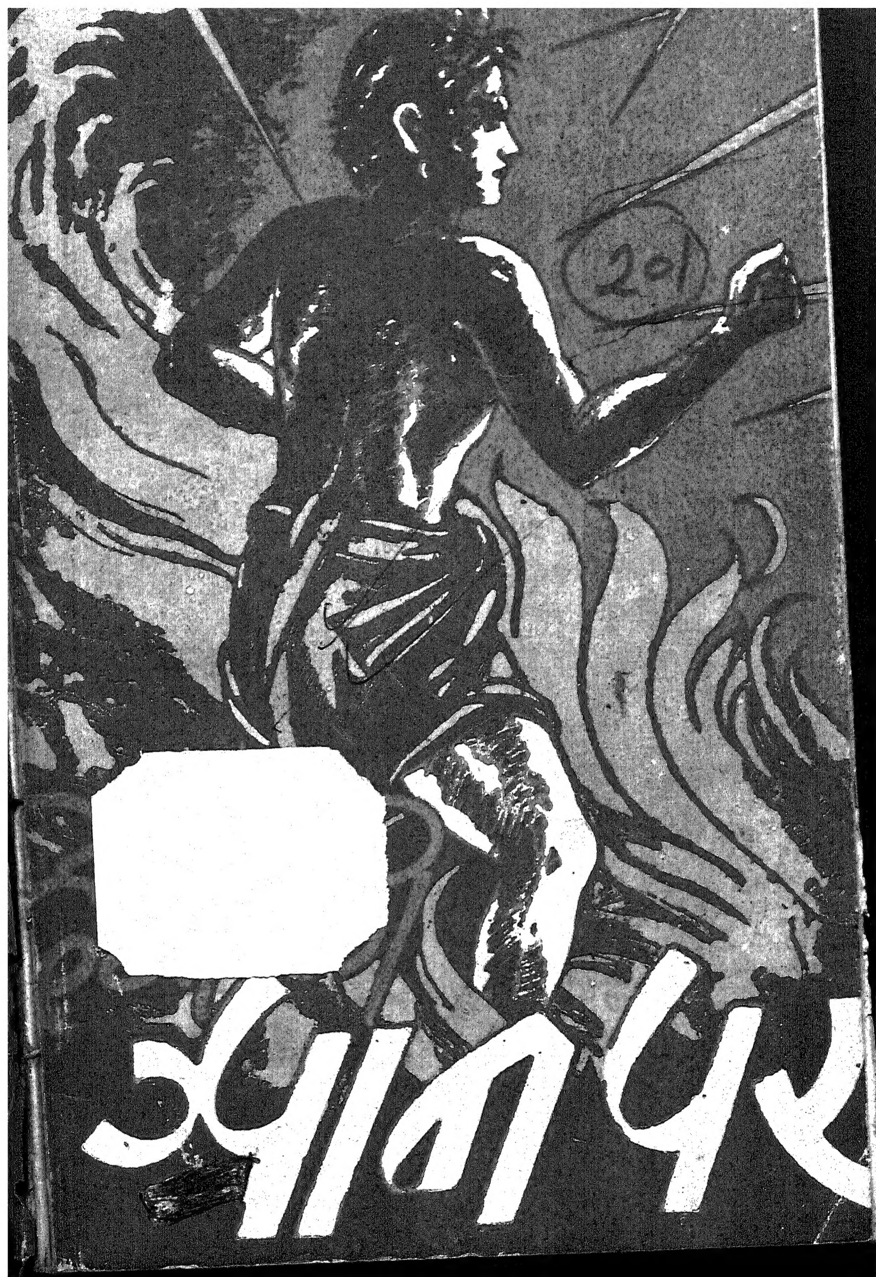


देश की आन पर

लेखक

श्री गणेश पांडेय

प्रकाशक

आधुनिक प्रकाशन गृह,

अलोपीबाग, इलाहाबाद

तीसवाँ संस्करण] १९८० [मूल्य ५.००

मुद्रक—सरयू प्रसाद पाण्डेय, नागरी प्रेस, अलोपीबाग, इलाहाबाद।

नये संस्करण के सम्बन्ध में

अब से दस वर्ष पहले इस पुस्तक का प्रथम संस्करण हुआ था। उस समय इस पुस्तक का हिन्दी भाषा-भाषियों ने अच्छा स्वागत किया था और प्रथम संस्करण हाथों-हाथ बिक गया था। पर युद्ध के कारण कागज मिलना दुर्लभ होने तथा अन्य कई कारणों से नया संस्करण शीघ्र न हो सका। इस बीच हमारा देश स्वतन्त्र हो गया। देश की परिस्थिति बदल गयी। इस परिवर्तित परिस्थिति के कारण यह पुस्तक भी नये कलेवर में प्रकाशित हो रही है। पहले दो संस्करणों में इसमें विदेशी कहानियों की बहुलता थी, पर इस संस्करण में, भारत की स्वतन्त्रता के लिए जीवन उत्सर्ग करने वाले, उन वीरों की अमर गाथाएँ भी दी गयी हैं, जिनके नाम भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे रहेंगे और जो मरकर भी अमर हैं। आशा है, इन कहानियों को पढ़कर हमारे विद्यार्थी तथा युवकगण अनुप्राणित होंगे और देश के लिए सर्वस्व निछावर करने का शुभ अवसर आने पर किसी भी प्रकार का त्याग करने में आगा-पीछा न करेंगे। इन्हीं नौनिहालों से भारतमाता को आशा है और इन्हीं पर देश का भविष्य निर्भर है। यदि इस पुस्तक को पढ़कर विद्यार्थी तथा युवकवर्ग ने कुछ भी प्रेरणा प्राप्त की तो लेखक अपने परिश्रम को सार्थक समझेगा।

गणेश पांडेय

विषय सूची

देश की आन पर

(१)

अभी जेनरल डायर की नृशंसता एवं रक्त-लोलुपता की कहानी सबकी जिह्वा पर नाच रही थी, जलियानवाला बाग के शहीदों के पवित्र रक्त प्रत्येक भारतीय युवक के रक्त को खौला रहे थे, लोगों का छाती के बल रेंगना आँखों के सामने नाच रहा था, और राह चलते लोगों को पकड़कर लगाये गये लप-लपाते बेंतों का कर्कश आघात अभी भी ताजा था। जिन लोगों ने कभी अखबार नहीं देखा था, उनके कानों में भी इस हत्याकांड की बात पहुँच ही गई और उनके हृदय में वेदना एवं प्रतिक्रिया के तूफान मँडराने लगे थे।

परन्तु जब इसकी सूचना महात्मा जी को मिली, तब उन्होंने असहयोग-आन्दोलन शुरू कर दिया। महात्माजी के मार्ग का अनुसरण करने वाले लोगों का अभाव न था। अध्यापक शिक्षण-कार्य त्याग, वकील बैरिस्टरी का चोंगा फेंक, छात्र-छात्राएँ स्कूल और कालेज छोड़, असहयोग-आन्दोलन के समर-प्रांगण में कूद पड़े, चेतना-शून्य प्राणियों की भाँति, पतिङ्गों के सदृश। महात्माजी के असहयोग आन्दोलन की चिनगारी से बालक आजाद भी वंचित नहीं रह सके। महात्माजी की सरकारी स्कूलों और कालेजों के दरवाजों पर धरना देने की बात ने उन्हें विशेष रूप से आकर्षित किया, और उसे मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता का मूलमंत्र मान वे इस दिशा में अग्रसर हुए।

इसी समय ब्रिटिश युवराज भारत में आगमन करने वाले थे। जिस समय बालक आजाद जैसे युवक कांग्रेस के आदेशों पर

बायकाट करने का प्रचार कर रहे थे, और कहीं उनके स्वागत में तोरणवार टँग रहे थे, कहीं बिजली के चकाचौंध करने वाले बल्ब लगाये जा रहे थे, बड़ी-बड़ी दावतों की तैयारियाँ हो रही थीं, सारा शहर सशस्त्र घुड़सवारों की टापों से गूँज रहा था। नाना वेशधारी खुफिया पुलिस भी, गिद्ध की भाँति, शिकार की ताक में टकटकी लगाये हुई थी, अचानक उत्सर्ग एवं बलिदान की भावना से ओत-प्रोत बालकों का एक दल, देश के लिए सिर पर कफन बाँधे, काशी की सड़क पर आ गया। उनके हाथ में झंडा और हृदय में बलिदान की मूक वाणी थी। इस टोली का नेतृत्व कर रहा था बालक आजाद, जिसकी कोमल कलाइयों में कुछ ही क्षणों बाद कर्कश हथकड़ियाँ खनखना उठीं। रस्सियों में जकड़ा, बिहँसता सिंह-शावक मजिस्ट्रेट के समक्ष अपने कई अन्य साथियों सहित उपस्थित किया गया। देश की आन पर कुर्बान होने वाले आजाद को देखने के लिए दर्शकों से इजलास ठसाठस भरा हुआ था। मजिस्ट्रेट ने देखा, आजाद की आँखों में अपार ज्योति है, मुखमण्डल तमतमा रहा है, और उसे गिरफ्तारी की तनिक भी परवाह नहीं है। उसने आजाद से पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

उसने अकड़कर बताया 'आजाद'।

'तुम्हारे बाप का नाम ?'

'स्वाधीन।'

'तुम्हारा घर कहाँ है ?'

'जेलखाना।'

मजिस्ट्रेट ने सोचा कि लड़का बड़ा गुस्ताख मालूम होता है। उसने क्रुद्ध हो १६ बेंत की सजा दे दी, परन्तु वह नहीं जानता था कि बेंत की धमकी उसे पथ से विचलित नहीं कर सकती। वह हँसता हुआ कटघरे से उतरा और विहँसता और

रस्सियों में जकड़ा, झूमता हुआ जेल की चहारदिवारी की ओर चला, जहाँ उसे बेंत लगाये गये।

लकड़ी की त्रिकोणाकार टिकटी एक कोने में खड़ी थी। जेल के डाक्टर प्राथमिक चिकित्सा की तैयारी किये खड़े थे। जेल सुपरिंटेण्डेण्ट अपने सहायकों के साथ पहुँच गये। आजाद छाती के बल टिकटी में बाँध दिया गया, ताकि वह हिल-डुल न सके। उसके पैर नीचे बँधे थे और दोनों हाथ ऊपर। छाती के नीचे गद्दी थी, जिससे छाती में चोट न लगे। उसका सारा शरीर करीब-करीब नंगा था, केवल चूतड़ पर झीना-झीना कपड़ा था, जिसके रहने से चोट में कोई कमी नहीं आ सकती थी। बगल में जल्लाद नागिन की जीभ की तरह लपलपाते हुए तेल में भीगे बेंत को सम्हाले आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा था। सुपरिंटेंडेंट की आज्ञा से एक-एक कर बेंत आजाद के नग्न चूतड़ों पर पड़ने लगे और वह हर बेंत पर 'गाँधी जी की जय' बोलता गया और 'सी' तक नहीं की। यद्यपि बेंतों की गहरी चोट ने उसके चूतड़ पर गहरे घाव कर दिये, परन्तु इसके चेहरे पर तनिक भी मलिनता न आने पायी। इन्हीं बेंतों के दाग उसके शरीर पर नहीं, मन पर भी पड़े और वह अंगरेजों का कट्टर शत्रु बना रहा।

(३)

गाँधी जी का असहयोग आन्दोलन बन्द हो चुका था, परन्तु क्रांतिकारी दल जोरों से बढ़ रहा था। ये भीतर ही भीतर एक सेना तैयार करना चाहते थे। परन्तु सेना में तनखाह मिलती है, तरक्की होती है, लड़ाई में मृत्यु होने पर घरवालों को पेन्शन मिलती है, और क्रांतिकारियों की सेना को तो केवल विपत्तियों के पहाड़ का ही सामना करना था। इस दल का दफ्तर प्रायः कहीं गली में ही होता

था, जहाँ बाहर तबले, बीड़ी-दियासलाई आदि रखे रहते थे और भीतर के कमरों में गुप्त गवेषणाएँ होती थीं। आजाद ने देखा, अँगरेजों से मुक्ति पाने के लिये क्रांतिकारी दल में सम्मिलित होना अनिवार्य है और वे इस दल के कार्यशील सदस्य हो गये। परन्तु इस दल को पैसे का नितान्त अभाव था। प्रश्न यह था कि पैसा आवे कहाँ से? आजाद ने प्रस्ताव किया, हम लोग इस काम में सरकारी खजाने का उपयोग कर सकते हैं। सरकारी खजाने नित्य रेलगाड़ियों में इधर-से-उधर जाते हैं, जिन्हें बड़ी सरलता से अपने हाथ में किया जा सकता है।

यह बात उनके कई साथियों को नहीं जँची और उनमें से एक ने इसका विरोध करते हुए कहा—'चोरी-डकैती चोर-डाकुओं का काम है। हमारा आदर्श ऊँचा है। ऐसा करना खतरे से भी खाली नहीं है।'

आजाद ने कहा—"क्रान्तिकारी किसी व्यक्ति को नहीं लूटते, वे तो आततायी सरकार के खजाने को लूटते हैं। ऐसी डकैतियाँ घृणित नहीं हैं। यह व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये नहीं, बल्कि देश के उद्धार के लिये है। देश की आन की रक्षा के लिये अपनी जान खतरे में डालना बहादुरों का काम है। इसमें कायरता दिखाना पाप है। देश-सेवा का पथ बड़ा बीहड़ है। यह फूलों की नहीं काँटों की सेज है।"

आजाद के ओजपूर्ण कथन ने बहुतों की आँखें खोलीं और एकमत से यह निश्चय हुआ कि लखनऊ के निकट, काकोरी में रेल के खजाने को लूट लिया जाय। अगस्त १९२५ को दोपहर के समय आजाद, अपने अन्य साथियों सहित गाड़ी में शाहजहाँपुर से सवार हो गये। तीन साथी सेकंड क्लास में, और सात तीसरे दर्जे में, सारी ट्रेन में बँटकर, सवार हुये। यह दल छेनी, घन, पिस्तौल आदि से लैस था।

सूर्यदेव अस्ताचल की ओर जाने की तैयारी में थे, उनकी प्रखर किरणें अब मन्द पड़ रही थीं और कुछ ही देर में संध्या-वधू का आगमन निश्चित था, गाड़ी अपनी पूरी गति से सनसनाती हुई जा रही थी, सहारनपुर से लखनऊ की ओर। अचानक एक स्थान पर सेकण्ड क्लास के डिब्बेवालों ने खतरे की जंजीर खींच दी। जंजीर खींचना था कि गाड़ी रुक गई और यात्री खिड़कियों से मुँह निकालकर बाहर झाँकने लगे कि क्या मामला है। निश्चित कार्यक्रम के अनुसार सभी लोग अपने-अपने काम पर डट गये। गार्ड साहब को पिस्तौल दिखाकर जमीन पर पेट के बल लेटने की आज्ञा दी गयी। गाड़ी के दोनों ओर दो-दो आदमी पहरे पर खड़े कर दिये गये, पिस्तौल के साथ। लोग पाँच-पाँच मिनट पर गोलियाँ चलाकर यात्रियों को सतर्क करते जाते थे कि वे न उतरें। गार्ड के डिब्बे से लोहे की सन्दूक उतार क्रान्तिकारी खजाना लेकर लखनऊ के लिए पैदल चल दिये। इसमें आजाद ने प्रमुख भाग लिया था और उसका श्रेय उसी को था।

पुलिस की तीव्र दृष्टि ने रहस्य का पता लगा ही लिया और सरकार समझ गयी कि यह सारा कार्य क्रान्तिकारियों का है। इस सिलसिले में सारे उत्तर भारत में गिरफ्तारियाँ हुईं और पुलिस ने चन्द्रशेखर आजाद को भी पकड़ना चाहा, परन्तु वे पहले ही उड़ चुके थे। अब आजाद ने बनारस छोड़ना ही श्रेयस्कर समझा, और काकोरी कांड के फरार अभियुक्त के रूप में पकड़नेवाले के लिए सरकार द्वारा घोषित हजारों रुपयों के इनामों का भार अपने सिर पर लिए, बड़े हल्के दिल से आजाद झाँसी पहुँचे और एक मोटर कम्पनी में मोटर का काम सीखने लगे। यहीं पर रहकर उन्होंने जंगल में निशानेबाजी का खूब अभ्यास किया।

मोटर का काम सीखते समय एक दुर्घटना हो गयी। बात यह हुई कि एक मोटर का हैंडिल लगाकर सब थक गये, पर किसी से वह लगता ही न था। आजाद कमर कसकर आगे आ गये और लोगों के मना करते रहने पर भी उन्होंने जोर से हैंडिल मारा। बस क्या था! हाथ की हड्डी टूट गयी और वे पीड़ा से परेशान हो उठे। उन्हें शीघ्र अस्पताल पहुँचाया गया, जहाँ उन्हें क्लोरोफार्म दे आपरेशन करने की तैयारी होने लगी। आजाद को डर था कि बेहोशी में न जाने वे क्या-क्या कह जायेंगे, जिससे देश तथा देश के उद्धारकों पर मुसीबत का पहाड़ आ गिरेगा और उस समय गजब हो जायगा। उन्होंने बिना क्लोरोफार्म लिये ही पीड़ा को सहन करते हुए हड्डियाँ जुड़वाना श्रेयस्कर समझा। वह देश पर आपत्ति नहीं आने देना चाहते थे। लेकिन डाक्टर बिना क्लोरोफार्म दिये आपरेशन करने को तैयार नहीं हुए। आजाद भी आपरेशन की मेज से उतर आये। बोले—"रहने दीजिए, किसी गड़रिये से ठीक करा लूँगा। वे बिना क्लोरोफार्म दिये ही हड्डी बैठा देते हैं। बिना हाथ का ही रहूँगा, परन्तु बेहोशी की हालत में हड्डियाँ नहीं बैठवाऊँगा।"

मित्रों ने देखा कि यह पीड़ा से परेशान हैं और सिर का भूत उतर नहीं रहा है। उन्होंने समझाया—'यदि तुम हाथ ठीक नहीं कराते हो तो देश का कितना अहित करते हो। तुम्हारे इन हाथों का देश को कितना बल है, और देश-हित में वीरता से प्रयुक्त किये जाने पर इनमें देश का उद्धार होगा कोई अहित की सम्भावना नहीं। यह बेहोशी इतनी खतरनाक नहीं होगी।

किसी प्रकार मित्रों के बहुत समझाने-बुझाने तथा आग्रह करने पर जब आजाद को विश्वास हो गया कि बेहोशी में

उनके मुँह से कोई देश के लिए अहितकर बात नहीं निकलेगी तब वे किसी भाँति, क्लोरोफार्म लेकर आपरेशन कराने को तैयार हो गये।

अठारह महीनों तक मुकदमा चलाने के बाद काकोरी षड़्यंत्र केस में फैसला सुना दिया गया। चार को फाँसी की सजा और शेष को भिन्न-भिन्न सजाएँ हुईं, जिसकी सूचना पा आजाद को गहरा आघात पहुँचा। उन्होंने अपने साथियों से सलाह की कि शहीदों के खून का बदला, क्रांतिकारी संगठन को शक्तिशाली बना अंग्रेजों से पिंड छुड़ाकर ही लिया जा सकता है। इसी आधार पर क्रांतिकारी दल का संगठन हुआ और सारे देश में बड़े उत्साह के साथ काम होने लगा।

सन् १९२९ की ८वीं अप्रैल! केन्द्रीय असेम्बली में पब्लिक सेफ्टी बिल पर दोनों दलों में खींचातानी हो रही थी। सभापति पटेल अपना महत्वपूर्ण निर्णय देने को उद्यत थे। सब की आँखें उन्हीं में केन्द्रित थीं अचल, अडिग। बातावरण बहुत ही उत्तेजनापूर्ण था। अचानक असेम्बली भवन में दर्शकों की गैलरी से एक भयानक बम गिरा, जिसके गिरते ही आतंक का धुआँ छा गया और सारा भवन 'इन्कलाब जिन्दाबाद' तथा 'साम्राज्यवाद का नाश हो' के नारे से बुलन्द हो गया। बम फेंकने वाले दो नवयुवक, सरदार भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त थे, परन्तु काकोरी से लेकर असेम्बली बमकांड तक की सारी घटनाओं में चन्द्रशेखर आजाद का हाथ था, यह सत्य था।

इन सारे उपद्रवों को बढ़ता देख पुलिस भी बहुत परेशान थी और आजाद को, किसी-न-किसी रूप में, गिरफ्तार करना चाहती थी। यह बात नहीं थी कि पुलिस को उनका पता ही न हो। पता तो उन्हें कई बार लगा, पर पुलिस अफसर

भयाकुल हो जाते। उसकी आकृति देखकर भी न देखने का बहाना कर बढ़ जाते थे।

सन् १९३१ की २७ फरवरी की बात है। दिन के दस बजे थे। विपत्तियों के पहाड़ के बीच से गुजरते हुए रण बाँकुरे आजाद, फरारी की हालत में सुखदेव राज के साथ, इलाहाबाद चौक से कटरा जाने वाली सड़क पर, किसी की प्रतीक्षा में घूम रहे थे। थोड़ी देर कोलाहलपूर्ण जन-पथ से अलग हट, वे लोग अल्फ्रेड पार्क में एक स्थान पर बैठ गये। दोनों में उत्तेजनापूर्ण बातें हो रही थीं और वे अपने को भूल से गये थे। इधर परिचित देशद्रोहियों ारा सूचना पा कुछ ही क्षणों बाद वे पुलिस द्वारा घेर लिए गये। अकस्मात् एक मोटर, आजाद से १० गज की दूरी पर रुकी, जिसमें से उतर पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट, नाट बावर, पिस्तौल निकाल आगे बढ़े और अँग्रेजी में कहा—'हैण्ड्स अप !'

गत दस वर्षों से साम्राज्यवाद के विरुद्ध अथक युद्ध करने वाला सेनानी ऐसी परिस्थितियों के लिए सदा तैयार था। उसने बिजली की भाँति शीघ्रता से अपनी पिस्तौल सम्हाल ली और धाँय से गोली दाग दी। दोनों तरफ से गोलियाँ चलने लगीं। नाट बावर की गोली आजाद की जाँघ में और आजाद की गोली बावर की कलाई में लगी। अब तक आजाद के साथी खिसक गये थे और चारों ओर से गोलियों की वर्षा अकेले आजाद पर ही हो रही थी। यह ग ोलाबारी एक पेड़ की ओट में करके ही हो रही थी, जिसकी आड़ से छिपकर नाट बावर ने अपनी जान बचायी।

आजाद के पास जितनी गोलियाँ थीं उनका उपयोग तो उन्होंने खूब किया, किन्तु आखिर वे कब तक समाप्त न होतीं ! जब उन्होंने देखा कि अब पार पाना मुश्किल है, और पुलिस

जीवित ही पकड़ लेगी, तब उन्होंने अन्तिम गोली अपने को ही मारी और हमेशा के लिए धराशायी हो गये।

कुछ क्षण के लिए वायुमण्डल में उदासी छा गयी। भय और निस्तेज ने वहाँ अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। साहस का सम्बल धराशायी था और कायरता सबको आतंकित किये हुए थी। स्फूर्ति की प्रतिमूर्ति वीरात्मा का पार्थिव शरीर निस्पन्द था, परन्तु किसी में साहस नहीं था कि उसके मृत शरीर की ओर भी बढ़े। सभी डर रहे थे कि कहीं मरकर भी जिन्दा न हो जाय और गोली चला दे, अन्त में आजाद के मृत शरीर पर भी पैर में गोली दागी गयी, यह निश्चय करने के लिए कि वे सचमुच मर गये हैं।

× × ×

आजाद की लाश जनता को नहीं दी गयी, परन्तु भारतीय मनोवृत्ति में पली जनता उस घटना-स्थल पर स्थित पेड़ पर फूल-पत्ते चढ़ा, इस महान कर्मठ शहीद की पूजा करने लगी और वह तीर्थ स्थान के रूप में हो गया, परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद इस स्मृति-चिह्न को कैसे अवशेष छोड़ता ? वह पेड़, जिसमें गोलियों के निशान मौजूद थे, काट डाला गया और उसकी जड़ तक की निशानी नहीं छोड़ी गयी।

आज भारत स्वतन्त्र है अल्फ्रेड पार्क में आजाद का छोटा सा स्मारक बन गया है, जहाँ जनता श्रद्धा से फूल चढ़ाती है। पर क्या उस बड़े देशभक्त का यह स्मारक पर्याप्त कहा जा सकता है।

प्रायश्चित

(१)

वह गरीब घराने का लड़का था। उसका नाम था जोनास यूडोसिया अपूर्व सुन्दरी थी, माँ-बाप की एकमात्र सन्तान। सभी उसका लाड़-प्यार करते, उस पर प्राण न्योछावर करते थे। दमिश्क शहर के हर एक की जिह्वा पर उसी की प्रशंसा थी।

यूडोसिया के बगीचे से बाहर ही जोनास की झोपड़ी थी। बाग के ईशान कोन पर एक बड़ा भारी बरगद का पेड़ था, जो बाँह की तरह अपनी शाखाओं को फैलाये हुए, झोपड़ी के आँगन पर छाया किये था। लड़कपन में जब यूडोसिया बरगद के तले, संगमरमर के बने चबूतरे पर चढ़कर हंसिनी की तरह गर्दन टेढ़ी करके खड़ी होती, उस समय बालक जोनास, अपने छोटे आँगन में खड़ा होकर, मुग्ध नेत्रों से उसके मुँह की ओर देखा करता।

लड़कपन का उनका परिचय जवानी के आरम्भ में, मुग्धता के रूप में परिणत हुआ। हर रोज संध्या के नियत समय के बहुत पहले, जोनास सब काम-काज छोड़कर घर के आँगन में आकर खड़ा हो जाता। प्रतिदिन सन्ध्या को यूडोसिया सन्ध्या-काल के तारे की उज्ज्वल रूप-राशि को लेकर संगमरमर के चबूतरे पर आकर खड़ी हो जाती। खड़े-खड़े एक दूसरे को देख-देख कर मन्त्र-मुग्ध हो जाते।

जोनास जानता था कि वह गरीब का लड़का है, प्रेम होने पर भी धनी की लड़की, यूडोसिया को प्राप्त करना उसके लिए

असम्भव है। उधर यूडोसिया सोचती, दुनिया की दौलत से क्या काम ? अपना सर्वस्व देकर भी, जोनास के प्रेम का शतांश भी प्राप्त कर सके तो वह कृतार्थ हो जाय। दोनों ने दोनों की अवस्था को अच्छी तरह समझ लिया था, इसी से एक दूसरे के प्रति उनका प्रेम चट्टान से रुकी नदी की भाँति, भीतर-ही-भीतर प्रतिहत होकर उछला पड़ता था।

इसी तरह कई वर्ष बीत गये। इसी बीच जोनास शाही फौज में भरती हो गया। इधर यूडोसिया ने, सोलहवाँ वर्ष समाप्त करके सत्रहवें में पदार्पण किया।

संसार में जोनास के लिए एकमात्र बन्धन थी उसकी बुढ़िया माँ। माँ को देखने के लिए महीने में एक दिन की छुट्टी लेकर वह घर आता। उस दिन की प्रतीक्षा में, कुछ दिन पहले ही से, यूडोसिया घंटा-मिनट गिन-गिन कर समय बिताती। बगीचे के निकट, खड़े-खड़े यूडोसिया के मुँह से बातें सुनते-सुनते जोनास के शरीर में, रोमांच हो आता—उसके मुँह की ओर देखते-देखते वह उन्मत्त हो उठती। बिदा लेने के समय एक महीने की भावी विरह-व्यथा से दोनों के नेत्र आँसुओं से भर जाते।

(२)

इस बार छुट्टी के बाद बहुत दिन हुए, जोनास राजधानी को लौटा गया है। यूडोसिया हमेशा की तरह आज भी बगीचे में टहलने के लिए आयी है, और उस चतबूरे पर चढ़कर खड़ी है, और जोनास की छोटी झोपड़ी की ओर देखकर सोच रही है, कब इस छोटी झोपड़ी के दिन फिरेंगे! इतने में पीछे से किसी ने चुपके से पुकारा "यूडोसिया!" आवाज सुनकर वह चौंक उठी, पीछे फिर कर देखा पसीने से तर जोनास हाथ में एक छोटी-सी पोटली लिए खड़ा है। जोनास बोला—

"असमय आने के कारण तुम्हें आश्चर्य हुआ होगा। डरने की बात नहीं है, नीचे उतर आओ, तुमसे कुछ खास बातें करनी हैं।"

यूडोसिया झटपट उतरकर उसके पास खड़ी हो गयी।

जोनास बोला, "उस फूल की झाड़ी की आड़ में चलो, यहाँ पर बातें करने से हम लोगों को कोई देख लेगा।"

जोनास के साथ वह झाड़ी की तरफ चली। बरगद के पेड़ से थोड़ी दूर पर माधवी लता का कुन्ज था। उसके पास जाकर दोनों आदमी दो शिला-खंडों पर, आस-पास बैठ गये।

जोनास बोला—"यूडोसिया, राजधानी का कुछ हाल चाल तुम्हें मालूम है? खैर सुनो, बहादुर ईरानियों की फौज खर्मूं पहाड़ पार करके इधर ही आ रही है। उसके साथ हम लोगों की लड़ाई होने का सम्भावना है।"

होने वाली लड़ाई की भावी आशंका से यूडोसिया के चेहरे पर कुछ भय का चिह्न दिखाई पड़ा। वह बोल उठी—"तो तुम भी लड़ाई करोगे? हाँ, क्यों न करोगे—जरूर करोगे—तो हम लोगों की फिर कब मुलाकात होगी।"

जोनास बोला—"इसी का बन्दोबस्त करने के लिए तो मैं दौड़ा हुआ आया हूँ। यूडोसिया, तुम्हें ईरानियों की सेना की शक्ति मालूम नहीं। उन्होंने आस-पास के सारे मुल्कों को जीत लिया है। दमिश्क की सारी सेना, इकट्ठी होने पर भी, उनका सामना नहीं कर सकती।"

काँपती हुई आवाज में यूडोसिया बोली—"तो क्या होगा, जोनास!"

जोनास बोला—"हाँ, यही मैं बतला रहा हूँ, सुनो। खुदा न करे यूडोसिया, अगर मैं इस लड़ाई से, अपनी जान लेकर न लौटूँ, ऐसी हालत में हम लोगों की सारी उम्मीदों पर हमेशा के लिए, पानी फिर जायगा। और भी एक बात है—तुम

अमीर की लड़की हो, मैं मामूली सिपाही। दमिश्क में रहने से हम लोगों का मिलना सम्भव नहीं है। ऐसी हालत में, मैं सोचता हूँ कि यह लड़ाई हम लोगों को मिलने का मौका देगी।"

यूडोसिया आश्चर्य-चकित हो उसके मुँह की ओर देखकर बोली—"तुम क्या कह रहे हो, मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

जोनास मुस्करा कर बोला—"तुम अभी तक वही भोली-भाली हो। सुनो यूडोसिया, ईरानी फौज इस शहर में आकर शहर का नामोनिशान मिटा देगी। नगर-निवासियों को कतल करेगी, गाँव के गाँव जलाकर वह अपनी जीत का डंका पीटेगी उस वक्त हम तुम कहाँ रहेंगे, यह कौन कह सकता है? इससे तो अच्छा यही है कि इस मौके पर हम तुम इस देश को छोड़कर भाग चलें तो दो दिन के बाद हम लोगों की खोज-खबर लेने वाला कोई न रहेगा। मैं इसका बन्दोबस्त करने के लिए ही सेना के खेमे से भागकर आ रहा हूँ। यह देखो, इस पोटली में सूरत बदलने की पोशाक ले आया हूँ। हम लोग बेखटके शहर से बाहर जा सकेंगे। हम लोग बहुत दिनों से एक दूसरे से मिलने का मौका देख ही रहे थे, उसके लिए क्या यह बढ़िया मौका नहीं है?"

जोनास की बात सुनकर यूडोसिया गम्भीर हो गयी। कुछ देर तक चुप रहने के बाद धीरे-से बोली—"प्यारे जोनास, मैं स्वप्न में भी इस बात का ख्याल न करती थी कि तुम अपनी जिह्वा से ऐसी बात निकालोगे। जोनास तुम बहादुर आदमी हो। मैं कसम खाकर कहती हूँ, तुमसे बढ़कर मुझे दुनिया में कोई प्यारा नहीं है, और न होगा। तुमसे मिलने में जो रुकावटें हैं वे दिन पर दिन और भी जटिल होती जाती हैं, और हम लोगों

के मिलने की बात भी दूर होती जाती है। लेकिन देश की तबाही से तुम मिलने के रास्ते को साफ करना चाहते हो! प्यारे, तुम्हारे मुँह से मैं यह कैसी बात सुन रही हूँ।"

यूडोसिया की बात सुनकर जोनास का मुँह लज्जा से उतर आया, साथ ही उसे आश्चर्य भी हुआ। लेकिन इस भाव को छिपाकर तत्काल बोल उठा—"मैं तो कुछ बुरी बात नहीं कह रहा हूँ। देश में रहने से हम लोगों की जान खतरे में रहेगी, जीवित रहने पर भी मिलना किस तरह हो सकेगा? ऐसी दशा में हम दोनों के भाग चलने से देश की क्या हानि होगी?"

यूडोसिया बोल उठी—"मैं स्त्री हूँ, मेरी बात न चलाओ। तुम बादशाह के सिपाही देश की रक्षा में भाग लेने वाले हो एक अबला के प्रेम में एक वीर अपने कर्तव्य को भुला देगा, यह बात मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकती।"

जोनास तर्क करने जा रहा था लेकिन यूडोसिया बीच में बाधा देकर उठ खड़ी हुई। खड़ी-खड़ी माधवी लता के पत्ते को नख से तोड़ने लगी।

दोनों थोड़ी देर तक चुप रहे, कुछ देर के बाद जोनास क्षुब्ध कंठ से बोला—"यूडोसिया, तो इस जीवन में हम लोगों के मिलने की आशा न रही! पता नहीं, लड़ाई के मैदान से लौटूँगा या नहीं। अगर लौटूँगा भी तो मिलने का कौन-सा उपाय होगा?"

यूडोसिया बोली—"हम लोगों का मिलना तो बहुत पहले ही हो चुका है। जात-बिरादरी का जहाँ तक सम्बन्ध है, वह तो केवल भौतिक मिलन है। वह इस जीवन में न होगा, दूसरे जीवन में होगा। लेकिन जोनास, मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ, देश के ऐसे संकट काल में एक स्त्री के प्रेम में पड़कर अपने कर्तव्य को न भूलो।"

जोनास ने जब देखा कि उसकी युक्ति और तर्क से यूडोसिया अपने संकल्पों को नहीं छोड़ रही है, उस समय वह दीर्घ निश्वास छोड़कर, उदास हो विदा हुआ। रास्ते की ओर देखती हु यूडोसिया अन्यमनस्क भाव से माधवी लता के एक पत्ते को लेकर टुकड़े-टुकड़े करने लगी।

(३)

रास्ते में जाते-जाते जोनास को होश आया—वह कहाँ जा रहा है। शिविर से भाग कर उसने सैनिक नियमों का उल्लंघन किया है। ऐसी हालत में पकड़े जाने पर तो उसका सिर तलवार से उड़ा दिये जाने का हुक्म होगा। भागने के पहले उसने कभी नहीं सोचा था कि यूडोसिया उसके प्रस्ताव का इस प्रकार अनादर करेगी, और उसे फिर शिविर को लौटना पड़ेगा। भविष्य की चिन्ता में वह इस समय विचलित हो उठा।

चौड़ी सड़क के बगल में स्थित घर के जँगले से चिराग की रोशनी छन-छन कर आ रही थी। चिन्ता से ग्रसित जोनास के मस्तिष्क पर अधिकार करने का शैतान को मौका मिला। जोनास बोला—"यूडोसिया—ओह! यूडोसिया को इस जन्म में न भुला सकूँगा। उसके साथ मिलने की आकांक्षा दिन पर दिन प्रबल होती जाती है। अगर मैं मर जाऊँ—चाहे लड़ाई के मैदान में मरूँ अथवा सैनिक नियमों के अनुसार मारा जाऊँ—तब तो हम लोगों का मिलना कहाँ हो सकता है? जन्मान्तर की बात कौन सोचे, जो बात इस जन्म में न हुई वह दूसरे जन्म में क्योंकर हो सकती है? अगर न भी मरूँ तो भी आशा कहाँ है? मैं गरीब सिपाही हूँ। मेरे साथ अमीर की लड़की की शादी हो, यह बिल्कुल सम्भव नहीं। वह दूर की बात है—इसे सोचने में भी कष्ट होता है! अच्छा, क्या किसी दूसरे उपाय से नहीं हो सकता?"

उसके दिमाग के भीतर से शैतान ने जवाब दिया—"क्यों नहीं हो सकता ?"

जरूर, उपाय तो हुआ ही था—'आह यूडोसिया, ऐसे मौके को भी हाथ से जाने दिया !"

उदास होकर वह फिर गहरी चिन्ता में डूब गया।

ऐसा मौका देखकर शैतान ने सारी शक्ति लगा कर उस पर आक्रमण किया। विपत्ति रूपी मरुभूमि में आशा-रूपी मृग-तृष्णा का साधन पाकर जोनास का मुँह प्रसन्नता से खिल उठा।

वह अपने मन ही मन अस्फुट स्वर से कहने लगा—

"मृत्यु के रास्ते में किसके लिए भटकूँ। जीवित रहने पर यूडोसिया मेरी होगी और बचने का भी सरल उपाय है। रही देश की बात, तो देश के लिए जब मैं जीवन के सुख-आनन्द से वंचित हो गया, देश का विधान मुझे कत्ल करने को कह रहा है, तो इस देश के साथ सम्बन्ध ही क्या रहा ? ईरानी फौज इस देश को पददलित करेगी ही, उनकी मदद पाने से जात-बिरादरी वाले मेरी शादी में रुकावट न डालेंगे। और जात-बिरादरी ही उस वक्त कहाँ रहेगी ? हाँ, उस समय यूडोसिया की स्वीकृति आवश्यक होगी। तो उसने तो कई बार कहा ही है कि मुझसे बढ़कर उसे संसार में और कोई प्यारा नहीं। आज वह भागने को तैयार नहीं हुई, उस दिन भागना न पड़ेगा—इस देश में रह कर दोनों दिल के मन्सूबे पूरे हो जायँगे। मेरी मृत्यु तो उसे अभीष्ट नहीं—अगर अपनी जान बचाने के लिये कोई तदवीर करूँ तो मुझे वह अवश्य क्षमा करेगी।"

कहते-कहते वह अकस्मात् सड़क पर खड़ा हो गया और सड़क छोड़ कर बायीं ओर, अँधेरे से ढँके तङ्ग पहाड़ी रास्ते को पकड़ा।

(४)

खर्मूं पहाड़ की तलहटी में दिग्विजयी ईरानी सेना की बड़ी छावनी पड़ी हुई है। युद्ध-सचिव खालेद और सेनापति अबू आबिदा एक सजे हुए तम्बू के भीतर बैठकर लड़ाई के सम्बन्ध में परामर्श कर रहे थे। इतने में सदर फाटक के पहरेदार ने सलाम करके खबर दी कि दमिश्क का रहने वाला एक आदमी शरण में आया है, वह सेनापति से भेंट करना चाहता है। वह यह भी कहता है कि आश्रय पाने पर वह दमिश्क के जीतने का आसान रास्ता बतला देगा। आबिदा ने आश्रयार्थी को भीतर लाने का हुक्म दिया। खालेद ने आबिदा के कानों में चुपके से कहा, "अल्लाह हम लोगों की मदद करे इस आदमी की सहायता से हम लोगों की विजय हो। इसका जीना-मरना तो इस वक्त हमी लोगों के हाथ में है।"

थोड़ी देर बाद पहरेदार ने आश्रयार्थी जोनास को साथ लेकर सेनापति के शिविर के भीतर प्रवेश किया, आबिदा जोनास के निर्भीक और तेजपूर्ण चेहरे को देख कर क्षण भर टकटकी लगा कर उसकी ओर देखता रहा। खालेद ने तिर्छी निगाह से आश्रय-चाहने वाले युवक को सिर से पैर तक देखा।

आबिदा ने पूछा—"क्या तुम ईरानी फौज की पनाह चाहते हो?"

जोनास ने बात बनाकर कहा—"दश्मिक में ईरानी हुकूमत को मैं बेहतरीन समझता हूँ?"

खालेद ने उसकी बात को युक्तियुक्त नहीं समझा। तो भी मीठे स्वर में आबिदा से कहा, "ज्यादा पूछताछ करने की जरूरत नहीं। विश्वास न करने लायक बात पर भी इस वक्त

विश्वास करने में हर्ज क्या है? इस आदमी का जीवन तो हम लोगों के हाथों में ही है।"

आबिदा ने फिर पूछा—"तुमने दश्मिक को जीतने का आसान रास्ता बताने को कहा है न?"

जोनास बोला—"मैं अभी बतला रहा हूँ। फिर भी जब कि मैं आप लोगों की मदद करूँगा, आप लोगों को एक बात में मेरी मदद करनी होगी, यह मेरी प्रार्थना है।"

आबिदा ने कहा, "वह कौन-सी बात है, खोलकर कहो।"

आबिदा के पूछने पर जोनास ने अपनी प्रणय-कहानी निष्कपट भाव से उससे कह सुनाई, और बोला कि यूडोसिया के साथ शादी करने में आप लोगों को मेरी मदद करनी होगी, आप लोगों की सहायता के बिना मैं इस काम में कभी सफल नहीं हो सकता।

जोनास की अजीब शर्त को सुनकर खालेद और आबिदा दोनों विस्मय से भर गये। मन ही मन उन्होंने सोचा, "यह शर्त अजीब होने पर भी मानने लायक है। इस शर्त को पूरा करने का वादा करने पर दमिश्क को जीतने में काफी मदद मिलेगी।" आबिदा प्रकाश्य रूप में बोला, "मैं तुम्हारी शर्त को पूरा करने का वादा करता हूँ। आज से इस खेमे में तुम्हें शरण दी जाती है। लेकिन याद रखना, अगर हम लोगों की शर्त पूरी न हुई तो तुम्हारी बोटी-बोटी चुनवा ली जायगी।"

जोनास ने सिर झुकाकर सलाम किया और पीछे हटकर खड़ा हो गया।

खालेद ने एक सिपाही को हुक्म दिया कि इस पर कड़ी दृष्टि रखे।

जोनास ने ईरानी सेना को अपनी सच्चाई का सबूत दिया। समय पड़ने पर आगे-आगे चल कर शहर के किले का

गुप्त द्वार दिखला दिया। चींटी की कतार की तरह ईरानी सेना ने नगर में प्रवेश कर सारे देश को तबाह करना प्रारम्भ किया। दमिश्क शहर के एक मनुष्य के विश्वासघात से उस पर खालेद की विजय वैजयन्ती फहराने लगी। सेनापति ने सन्तुष्ट होकर उसे एक तलवार खिलअत में दी।

विजयमद से मतवाली ईरानी सेना जिस समय अपने विजय-गौरव का प्रदर्शन कर रही थी उस समय आबिदा ने जोनास की शर्त को स्मरण कर यूडोसिया की प्राण-रक्षा कर खेमे में लाने का हुक्म दिया। जोनास आगे-आगे होकर, सैनिकों के साथ, यूडोसिया के घर की ओर चला।

शहर के ध्वंस होने और नागरिकों की हत्या का लोमहर्षक वृत्तान्त शहर के चारों तरफ फैल गया। प्रतिक्षण विपत्ति की आशंका कर यूडोसिया मरने के लिए तैयार बैठी थी। इस दुर्दिन में भी जोनास की याद उसको आती थी, और वह उसका समाचार जानने के लिए तड़फड़ा रही थी। ऐसे ही समय में अप्रत्याशित भाव से जोनास को जीवित आते देखकर उसके अंग-प्रत्यंग में आनन्द की हिलोरें उठने लगीं। आलिंगन करने के लिए वह दौड़ती हुई उसकी ओर बढ़ी। लेकिन दो पग बढ़ते ही, ईरानी सेना के अधिनायक पद पर उसे देखकर, वह स्तम्भित होकर खड़ी हो गयी। फिर जोनास ने उसे एक-एक करके सभी बातें सुनायीं। सभी सुनकर, सभी कुछ समझकर, दुःख, लज्जा और क्रोध से उसका सर्वाङ्ग काँपने लगा।

बहुत देर तक चुप रहकर यूडोसिया ने उत्तेजित कंठ से पुकारा—"जोनास!"

यूडोसिया के कण्ठ-स्वर को सुनकर जोनास डर गया। उसके गले से मीठे स्वर में निकला, "प्यारी!"

यूडोसिया ने पहले की तरह उत्तेजित स्वर में कहा—"नहीं,

तुम मुझे इस तरह से न सम्बोधित करो। मैं तुम्हारी प्यारी हूँ? तुम मेरे मुल्क के दुश्मन होकर मुझे प्यारी कहते हो? जोनास तुम्हें प्यारी है ईरानी फौज, तुम्हें प्यारी है दगाबाजी! दगाबाज, आँखें खोलकर देखो, तुम्हारी दगाबाजी से आज यह चमनिस्तान वीरान हो रहा है! शहरवालों का हाय-तोबा, मुल्कवालों का रोना-धोना, माँ और बच्चों का चिल्लाना चारों तरफ जो यह हो-हल्ला मचा हुआ है, यह सब देख सुनकर भी क्या तुम्हें दर्द नहीं पैदा होता? ऐ बेरहम! हाय, तुमने क्या इस बात को भी न सोचा था कि मैं इस सदमे को सहन न कर सकूँगी। हाय, तुमने यह क्या कर डाला?

यूडोसिया अपने नेत्रों के आँसुओं की धारा रोक न सकी, दोनों गालों पर आँसुओं की धारा बह चली।

जोनास बोला, "यूडोसिया, मैंने तुम्हारे लिये ही यह सब किया। भागने के बाद खेमे को लौटना मुमकिन न था। तुमसे मिलने का दूसरा आसान तरीका न था, इसी से ऐसा किया है। प्रेम के सामने जान, दीन-दुनिया सभी हेय हैं। तुम्हें पाने की उम्मीद में जो कुछ किया है, उसके बदले में चाहे जो कुछ कहो करने को तैयार हूँ, लेकिन मुझ पर नाराज न हो। उठो, सभी रुकावटों का रास्ता बिल्कुल साफ हो गया। इस बार हम लोगों के मन की सभी मुरादें पूरी हो जायँगी।"

यूडोसिया कड़क कर बोली—"मेरे ही लिये यह सब कुछ किया है? इस तुच्छ शरीर की सुन्दरता के लिए देश से विश्वासघात किया है? क्या तुम्हारा विचार है कि देश के शत्रु की कामवासना के लिए मेरा यह शरीर बना है? जोनास, शरीर का मिलन ही क्या असली मिलन है? हाय, यह देह क्या देश की बर्बादी के लिए खुदा ने बनायी है?

अगर इसी के लिये मेरी देह बनी है, तो इसके लिए तुम्हें कुफ्फारह (प्रायश्चित) न करना पड़ेगा मैं ही करती हूँ—"

यह कहते-कहते यूडोसिया ने कपड़े के भीतर से फुर्ती से तेज छुरा निकाला। विपत्ति की सम्भावना देखकर जोनास डरते हुए आगे बढ़ा—

लेकिन उसके आगे बढ़ते ही यूडोसिया ने तेज छूरे को अपनी छाती में समूचा घुसेड़ लिया—उसका कान्त कलेवर जोनास के पैरों के पास लोट पड़ा

———

पत्थर की छतरी

(१)

वे दिन थे बसन्त के। सचमुच वे मारवाड़ के बसन्त ही के दिन थे। उधर बाहर प्रकृति झूम रही थी, फलों में, पक्षियों के रव में, वृक्षों पर, लतिकाओं पर, सर्वत्र अपने हृदय के उल्लास को बिखेर रही थी। इधर बह रहा था, मारवाड़ निवासियों के हृदय में आनन्द का सागर। बसन्त आनन्द के उस समुद्र में और भी अधिक लहर उत्पन्न कर रहा था, और भी अधिक आवेग पैदा कर रहा था।

प्राण-प्राण में आनन्द था, हृदय-हृदय में उत्साह था, उमङ्ग थी, सभी कोकिल की तरह कूक रहे थे, पक्षियों की भाँति चहचहा रहे थे। किसान खेतों पर जाते तो गाते हुए जाते थे। चरवाहे मैदान में बकरियाँ चराते तो संगीत की धारा-सी बहाते रहते थे। स्त्रियाँ पनघट की ओर चलतीं तो कोयल की भाँति चहकती जातीं। चारों ओर संगीत ही संगीत, आनन्द ही आनन्द।

आज अठारह वर्षों के पश्चात मारवाड़ ने नया जीवन देखा था। आज अठारह वर्षों के पश्चात् मारवाड़ की मही-माता दासता की बेड़ियों से मुक्त हुई थी। मारवाड़ के स्वनामधन्य महाराजा जसवन्तसिंह के पुत्र अजीतसिंह ने आलमगीर की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ को मुगलों के पञ्जों से छुड़ाया था। घर-घर में आनन्द था, घर-घर में उत्साह था। बन हँस रहा था, मेदिनी विहँस रही थी। स्वयं अरावली पर्वत भी दर्प से सिर ऊँचा करके ताल ठोंक रहा था, भुजदण्ड मरोड़ रहा था।

सहसा यह वासन्तिक दृश्य धूमिल पड़ गया, उसी प्रकार, जिस प्रकार प्रकृति के आँगन में बसन्त के पश्चात् ग्रीष्म आकर उसके वैभवों को नष्ट कर देता है। मुगल सेना पुनः बहुत शक्ति लेकर मारवाड़ पर चढ़ दौड़ी। मुगल सेना में कुल पचास सहस्र सिपाही थे। नये सम्राट का साला मिर्जा मुजफ्फर बेग इसका अधिनायक था। देखते ही देखते मारवाड़ का सारा आनन्द विषाद के रूप में परिवर्तित हो उठा। गाँव उजड़ गये, नगर नष्ट कर दिये गये। अधपके खेत रौंद डाले गये, फूले हुए बगीचे उजाड़ दिये गये। चारों ओर लूट पाट, चारों ओर उपद्रव। युवक है या वृद्ध, स्त्री है या शिशु, इसकी चिन्ता नहीं! केवल तलवार चलाने से तात्पर्य है। मार्ग में जो मिलता, वही तलवार के घाट उतार दिया जाता। मार्ग में जो कुछ पड़ता, बस उसी पर सेना दौड़ती। फूला-फला मारवाड़ वीरान हो गया! चारों ओर आतंक, चारों ओर भय! मारवाड़ निवासी विचलित हो उठे।

(२)

किन्तु जागृति का युग था, जीवन के दिन थे। अपने उजड़े हुए खेतों को जब युवकों ने देखा और जब उनके कानों में पड़ा सिसकती हुई स्त्रियों का करुण क्रन्दन, तब क्रुद्ध सर्प की भाँति वे फुफकार उठे। उनके हाथ तलवार पर जा पड़े, और वे मुट्ठी में तलवार की मुठिया पकड़ कर, बिजली की भाँति शत्रु की ओर दौड़ पड़े। घर-घर से युवक निकल रहे थे, गाँव-गाँव से उनकी सैकड़ों-सहस्रों की संख्या बाहर हो रही थी। हाथ में तलवार, कन्धे पर ढाल और अधरों पर मातृभूमि की जय के शब्द! उस जगे हुए मारवाड़ और मारवाड़ी युवकों का यह सम्मिलित रव ऐसा ज्ञात होता था, मानो सुप्त जीवन जाग उठा हो।

जोधपुर के दक्षिण सुविस्तृत मैदान। कई सहस्र राठौर युवक पंक्ति बाँध कर खड़े थे। उनकी आँखों में मातृभूमि की भक्ति थी और आकृति पर उत्सर्ग के भाव! वे घर से निकले थे मातृभूमि का उद्धार करने, उसके उद्धार के लिए अपने प्राणों का बलिदान करने! वे रह-रह कर क्रुद्ध सर्प की भाँति फुफकार रहे थे। उनके नेत्रों से आग की ज्वाला सी निकल रही थी। उनका हृदय मथा हुआ था देश की पीड़ा से, मातृभूमि की वेदना से। वे शत्रु पर सिंह की भाँति झपट कर जूझ मरना चाहते थे।

इनका सेनानायक एक राठौर युवक था। आयु थी केवल बाईस वर्ष की। श्वेत रङ्ग के चंचल अरबी घोड़े पर सवार हो कर, इस ओर से उस ओर दौड़ लगा रहा था। उसका गोरे रङ्ग का तेज-दीप्त मुख-मण्डल ऐसा ज्ञात होता था, मानो वीरता ने स्वयं पुरुष का स्वरूप धारण किया हो! अंग-अंग से वीरता टपक रही थी, तेज बरस रहा था। वह घोड़े को दौड़ाता हुआ जिस ओर पहुँच जाता, सैनिक जीवन का अनुभव करने लगते, साहस और उत्साह से भर जाते। विचित्र था वह राठौर युवक। साहस और शक्ति की प्रतिमा था, जीवन और जागृति का साक्षात् अवतार था।

वह था वीरवर दुर्गादास का पुत्र, नाम जुझारसिंह था। वीर पिता का वीर पुत्र था। पिता का अदम्य साहस, पिता का गर्वित पुरुषार्थ उसकी रग-रग में बसा हुआ था, उसे ज्योतित कर रहा था। सारी सेना अधीर थी। कब सेनापति का आदेश मिले और शत्रु पर बरस पड़ें। जुझार सैनिक की मनोवृत्ति को समझ कर एक ऊँचे टीले पर खड़ा हो गया, और जल से भरे हुए बादल की भाँति, गरज-गरज कर कहने लगा, 'वीरो, देखो, सामने की ओर देखो। शत्रु के पचास

सहस्र सैनिक खड़े हुए हैं। इन्हीं ने हमारे खेतों को रौंद डाला है, इन्हीं ने हमारे बगीचों को उजाड़ डाला है, और इन्हीं ने हमारे गाँवों को जलाकर निरपराध स्त्री-बच्चों की हत्या की है। ये हमारी स्वतन्त्रता का अपहरण करना चाहते हैं, और पहनाना चाहते हैं हमारी माता-मही के पैरों में बेड़ियाँ! ये अपराधी हैं। तुम्हारी तलवारों को इन्हें गाजर और मूली की भाँति काटना चाहिए।"

समस्त सेना मातृ-भूमि के जयघोष से निनादित हो उठी। जुझार ने अपनी तलवार ऊँची की। उसकी आकृति पर उमंगों के भाव थे, बलिदान की कामना थी। सैनिक बड़ी श्रद्धा से उसकी ओर निहार रहे थे। जुझार पुनः अपने गम्भीर स्वर से सैनिकों के हृदय में साहस व शक्ति का संचार करने लगा—वीरो! आज मातृ-भूमि ने तुम्हारा आवाहन किया है। रणदेवी हाथ में खप्पर लेकर खड़ी है। तुम्हें अपने रक्त से उसका खप्पर भरना होगा। उसे संतृप्ति देनी होगी। चिन्ता नहीं शत्रु, अधिक संख्या में हैं किन्तु गीदड़ और भेड़िये भी तो अधिक संख्या में होते हैं। तुम सब सिंह और बाघ की भाँति उन पर टूट पड़ो देखो, वह राठौरी झंडा फहरा है। दूसरी ओर मुगलों का झंडा है। राठौरी झंडे की रक्षा में अपने प्राणों को अर्पण दो। वीरो, मैं आज तुम्हारे सम्मुख यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मुगलों के झंडे को छीन लाऊँगा, और उसे अपने महाराज की सेवा में समर्पित करूँगा। यह असम्भव है कि इस देश में राठौरी झंडे के अतिरिक्त और कोई झंडा आकाश के ऊपर उड़े। चलो वीरो, मेरे साथ आगे बढ़ो। बोलो 'मातृ-भूमि की जय!'

पृथ्वी-आकाश जयघोष से गूँज उठे। सैनिकों की तलवार म्यान से निकल पड़ीं। रण-वाद्य बज उठे और दौड़ पड़े राठौरी

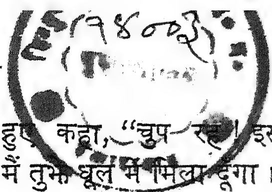
युवक शत्रु सैनिकों की ओर, बिलकुल सिंह के सदृश, बिलकुल वाघ की तरह! शत्रु सैनिक भी तैयार ही थे। तलवारें चलने लगीं, तोपें गरजने लगीं। तुमुल रव के साथ युद्ध ने भयानक रूप धारण किया। पृथ्वी लाल होने लगी, आकाश चमकने लगा और सैनिक एक दूसरे पर घात-प्रतिघात करके अपने कर्तव्य का पालन करने लगे।

(३)

युद्ध-भूमि के अन्तिम भाग में हाथी पर आरूढ़ मुजफ्फर बेग था। वही युद्ध का संचालन कर रहा था। उसी के साथ एक दूसरे हाथी पर मुगल झंडा था, जिसकी रक्षा तीन सहस्र मुगल सैनिक कर रहे थे। जुझार की दृष्टि उसी मुगल झंडे पर थी। वह शत्रुओं के व्यूह को भेदन करता हुआ धीरे-धीरे झंडे की ओर अग्रसर हो रहा था। चारों ओर मुगल सैनिक थे, जुझार सबको काई की भाँति काटता हुआ आगे बढ़ता जा रहा था। अन्त में वह झंडे के निकट पहुँच गया। उसने एक ही तलवार में महावत का सफाया करके झंडा अपने हाथ में ले लिया। झंडा रेशम का बना हुआ था और उसमें मोतियों की झलार टँकी हुई थीं।

जुझार की आकृति दर्प से हँस उठी। उसने झण्डे को ऊँचा उठा राठौर वीरों को ललकार कर कहा, "वीरो! आ गई मुगलों की मर्यादा हाथ में। अब इसे ले जाकर महाराज के चरणों में डाल दूँगा।"

राठौरी वीर विजय से उत्तेजित हो उठे और कर उठे आनन्द के जयनाद। मुजफ्फर बेग क्रोध से काँप उठा। उसकी आँखों के सामने ही मुगल झंडे का अपमान! उसकी आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ निकल पड़ीं। उसने जुझार को डपटते



हुए कहा, "चुप रह ! इस झंडे को यहाँ से ले जाने के पूर्व ही मैं तुझे धूल में मिला दूंगा ।"

मुजफ्फरबेग टूट पड़ा जुझार के ऊपर। उसने मुगल सैनिकों को ललकारा। जुझार घिर गया शत्रु-सैनिकों से। उसके इने-गिने साथी थे। वह उन्हीं को लेकर जुट पड़ा मैदान में। राठौरी वीरों ने दूर से देखा, सेनापति घिर गया है। बस फिर क्या ? वे क्रुद्ध काल की भाँति युद्ध करके आगे बढ़ने का प्रयत्न करने लगे। राठौरी वीर दोनों हाथों से तलवार चलाने लगे, शत्रुओं के व्यूह का भेदन करने लगे। मुजफ्फर भी मुगल सैनिकों में उत्साह भर रहा था, प्राण उत्पन्न कर रहा था। मुग़ल सैनिक रह-रह कर जूझ रहे थे। जुझार ने अकस्मात् मुजफ्फर पर भाले से आक्रमण कर दिया। मुजफ्फर हाथी के नीचे आ गया और साथ ही जुझार भी। दोनों एक दूसरे से गुथ गये।

जुझार के शरीर में अगणित घाव थे। वह तलवार चलाता जाता था और मुगल झंडे को हाथ में कस कर पकड़े हुए था। सहसा मुगल सैनिकों के पैर उखड़ गए। क्रुद्ध राठौरी वीरों ने उन्हें साहस-हीन बना दिया। वे भागने लगे और राठौरी वीर करने लगे उनका सर्वनाश। देखते ही देखते सहस्रों मुगल सैनिक भूमि पर कट कर गिर गये।

जुझार भी आहत होकर भूमि पर पड़ा था। उसके हाथ में मुगल झंडा था। अपनी विजय देखकर वह आनन्द से उछल पड़ा। उसने आवेग में आकर जोर से कहा, "मारवाड़ की जय, मारवाड़ी वीरों की जय।"

राठौरी वीर एक-एक करके सेनापति के चारों ओर एकत्र हो गये। मुगल सैनिक भाग रहे थे। किन्तु अब भी युद्ध हो रहा था। मुगल सैनिक चाहते थे सेनापति पर आक्रमण करना, किन्तु राठौरी वीर बड़ी तत्परता से सेनापति की रक्षा कर रहे

थे। इन वीरों में गोगूंद का माहौर सिंह आदर्श रूप था। वह स्वयं भी सैकड़ों घावों से आहत था। शरीर जर्जर हो उठा था। अंग-अंग से निकल रही थी रक्त की धारा! पर वह कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ था, डटा हुआ था। उसका वह साहस, उसकी वह स्फूर्ति शत्रु भी वाह-वाह कर उठते थे।

दूसरी ओर लड़ रहे थे भगवान दास। उनके सामने के शत्रु सैनिक भाग चुके थे, उनकी दृष्टि पड़ी सेनापति पर। वे शीघ्र ही तीर की भाँति वहाँ पहुँचे। उन्होंने जुझार के सिर को अपने घुटनों पर रख लिया। जुझार का सारा शरीर रक्त से लथपथ था। भगवान दास जुझार की ओर देखकर बोल उठे, "महावीर, तू धन्य है! तुझ पर मारवाड़ को गर्व है, महागर्व है! तू आज मारवाड़ की मही माता की गोद को क्यों सूनी कर रहा है? वीर! अभी तेरी अवस्था ही क्या है?"

जुझार के अधरों पर हँसी की एक अस्पष्ट रेखा दौड़ गई। उसने मारवाड़ी भाषा में कहा, "मेरे लिए इससे अच्छा और क्या हो सकता था! किन्तु अभी यह समाचार किसी पर प्रकट न कीजिये, अभी भी युद्ध हो रहा है। जब तक यह युद्ध होता रहे, मेरे शरीर को गड्ढे में छिपा दीजिये। राठौरी वीरों का उत्साह मन्द न पड़ने पावे। विजय निश्चय ही हमारी होगी।"

जुझार ने दूसरी ओर देखा। पास ही एक आहत व्यक्ति पड़ा था। वह मुजफ्फरबेग था। जुझार ने उसकी ओर संकेत करके कहा, "ठाकुर! इस कायर को बाँध लीजिये। इसे महाराज के सामने ले जाइयेगा और महाराज से निवेदन कीजियेगा कि इस पर उस मनुष्य ने विजय प्राप्त की है, जिसके वंश में युद्ध-भूमि को ही मृत्यु-शय्या बनाने की प्रथा चली आ रही है।"

वह आहत था, अपना दम तोड़ रहा था, किन्तु मुस्कान की एक हल्की रेखा उसके अधरों पर दौड़ गई। अब भी युद्ध हो रहा था। मुगल सैनिक भागे जा रहे थे। जुझार अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा उठ कर बैठ गया, सैनिक चारों ओर घेरे खड़े थे। उसने सबकी ओर देखकर भगवानदास से पूछा, "ठाकुर ? क्या अब भी युद्ध हो रहा है ?"

"हाँ – भगवानदास ने जुझार की ओर देखकर कहा— "किन्तु नहीं के बराबर। मुगल सैनिक भाग रहे हैं। राठौरी वीर उनका संहार कर रहे हैं।"

जुझार ने भगवानदास की ओर देखा। उसकी आँखें फैली हुई थीं। साँस उखड़ी जा रही थी। और उसने मन्द स्वर में कहा—"अच्छा ठाकुर, एक बार बोलिये तो 'मारवाड़ की जय' और राठौरी वीरों की जय !"

भगवानदास और खड़े हुए सैनिक अभी उसके इस वाक्य को पूर्ण रूप से दुहरा भी न पाये थे कि वह उनकी गोद में गिर पडा। भगवानदास के नेत्रों से आँसू लुढ़क पड़े। इसी समय एक राठौरी युवक ने आकर सम्वाद दिया, "मैदान खाली हो गया। सभी मुगल सैनिक भाग गये। हमारी विजय !"

भगवानदास ने जुझार की ओर देखकर दुःख के साथ कहा, 'हाँ, हमारी विजय किन्तु बहुत ही मँहगी !'

× × ×

जोधपुर दुर्ग के दक्षिण की ओर लूनी नदी बह रही है। नदी ही के तट पर पत्थर की छतरी है। उसी में जुझार अब भी सोया हुआ है। मारवाड़ निवासी छतरी के पास बैठ कर बड़ी भक्ति से जुझार की वीरता का बखान करके, उसके ऊपर श्रद्धा के रूप में, आँसू के मोती बिखरते हैं।

देश-भक्ति का पुरस्कार

घना जंगल है, प्रकृति निस्तब्ध है, रह-रह कर ठंडी हवा हू-हू करती हुई बहने लगती है, चारों ओर कुहरा छाया हुआ है। डूबते हुए सूर्य को देखना भी कठिन हो रहा है। दोपहर से घनी पत्तियों वाले वृक्षों की शाखाओं पर बर्फ जम रही है। चारों तरफ बर्फ ही बर्फ दिखाई पड़ती है मानो सर्वत्र चाँदी ही चाँदी बिछी हो।

वन-रक्षक के मकान के दरवाजे के सामने एक युवती शाल की लकड़ी चीर रही है। उसके दोनों कानों में नीले रंग की दो वालियाँ हैं और दोनों हाथों में सोने की दो चूड़ियाँ। बालों के जूड़े पर वन-पुष्पों की माला सुशोभित है। युवती वन-रक्षक की लड़की है। उसकी पोशाक सफेद है, स्वस्थ और सुगठित शरीर काठ की ओर कुछ झुका हुआ-सा है। कमर में एक मोटा कपड़ा चन्द्रहार की तरह बँधा हुआ है। दूर से देखने से जान पड़ता है कि युवती साक्षात् वन देवी है।

सन्ध्या होती देखकर उत्कंठित हो रही वन-रक्षक की स्त्री ने भीतर से पुकारा, "जल्दी चली आओ बार्थिन, बड़ा अंधेरा हो आया।"

"डरने की क्या बात है माँ, मेरा काम खतम हो चला"—लकड़ी चीरती हुई लड़की ने हँसकर बाहर से जवाब दिया।

"बेटी, भय की तो और कोई बात नहीं! ऐसे घने अन्धकार में, भयावने वन में, दो माँ लड़की अकेली हैं, इस पर देश के शत्रु, प्रुशियन अत्याचार कर रहे हैं। न बेटी, तुम जल्द चली आओ। दरवाजे अच्छी तरह बन्द कर लो बेटी, भय

की बात कौन कहे, हो सकता है कि प्रुशियन सिपाही इसी वन के रास्ते से होकर आ निकलें।" माता के कण्ठ-स्वर से डर और घबराहट साफ झलकती थी।

शरीर की सारी ताकत लगाकर युवती ने बाकी लकड़ी को चीर डाला और चीरी हुई लकड़ियों को रसोई घर में रख कर, दरवाजा बन्द करने के पहले चारों तरफ, सावधानी से निगाह डाली। इसके बाद माता के पास पहुँच कर कौतुक के तौर पर हँसती हुई बोली, "यह लो, मैं आ गई। माँ, तुम बड़ी डरपोक हो—इतना भय न करने से भी काम चल सकता है।"

"जो हो बेटी, मुझे अच्छा नहीं मालूम होता, तुम्हारे बाप घर में नहीं, हम दोनों स्त्री ठहरीं।"—कह कर वृद्धा ने सिर हिलाया। वास्तव में अकेले रहना उसे बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा था। हवा की सों-सों आवाज आ रही थी, उधर पेड़ के पत्ते खड़-खड़ कर रहे थे। ऐसी दशा में किसको भय न लगता, तो भी लड़की को पास में पाकर बहुत मुश्किल से, उसने चर्खा कातने में मन लगाया। "माँ, निश्चित रहो, यहाँ तुम्हारे प्रुशियन नहीं आ रहे हैं और यदि आ भी जाँय तो क्या है, मैं अकेली ही उनसे निपट लूँगी।" कह कर युवती ने कमरे की दीवार पर लटकती हुई बन्दूक की तरफ एक बार देखा।

युद्ध छिड़ने के कुछ पहले ही युवती का पति सेना में भरती होने की आज्ञा पा, घर से चला गया था। उसी समय से बार्थिन पिता के घर, माता के पास रहती है। बार्थिन का पिता खेती करके अपनी जीविका चलाता है, युद्धारम्भ होते ही बड़े उत्साह के साथ वह फौज में भर्ती हो गया और जर्मन सिपाहियों की गति-विधि पर लक्ष्य रखने के लिये इस जनहीन जंगल में रहने को उसे आज्ञा मिली है। जंगल में होने वाले बहुत तरह के फल-फूलों और पास ही बहती हुई नदी के स्वच्छ

जल तथा शिकार से प्राप्त जंगली जानवरों के माँस से ही इन लोगों का निर्वाह होता है।

इस जंगल से बहुत दूर पर एक शहर है, जिसका नाम है स्थेल। शहर पुराना है और एक पहाड़ पर बसा हुआ है। इस स्थेल शहर के रहने वाले देश के लिए प्राणपण से युद्ध करते हुए वीरों की तरह मृत्यु का आलिंगन करते हैं। सैनिकों को इकट्ठा करने, बन्दूक, तोप, अस्त्र-शस्त्र आदि एकत्रित करने में दिन-रात व्यस्त रहते हैं। देश भर में सभी लोग इस युद्ध में भाग लेने के लिए, दल के दल, कुश्ती लड़ने में लगे हैं। बनिये, जुलाहे, वकील, मास्टर, प्रोफेसर, विद्यार्थी, लेखक, कवि आदि सभी अपना-अपना व्यवसाय छोड़कर आज देश की रक्षा के लिए कृत-संकल्प हुए हैं।

सुप्रसिद्ध वस्त्र-व्यवसायी मोशिये बेवजिन के दामाद मोशिये लेविंग आज स्थेल की सेना के अधिनायक हैं। एकत्रित सैनिकों के स्वास्थ्य और शरीर-गठन के अनुसार मोटे-ताजे लोग बड़े-बड़े पत्थर फेंकने का अभ्यास करते हैं, जिससे उनका दम बढ़ेगा और स्थूल शरीर पेशी वाला हो जायेगा। जो दुबले-पतले हैं, उन्हें पत्थर उठाने पड़ते हैं जिससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहेगा।

प्रुशियन सेना स्थेल से थोड़ी दूर पर रहती है यही क्यों निकोलस के घर के आस-पास गुप्तचरों को भेज कर इसके पहले ही दो बार फ्रांसीसी सिपाहियों की गति-विधि का पता भी लगा लिया था। वृद्ध निकोलस की तीक्ष्ण दृष्टि से शत्रु-पक्षवालों की यह चाल पकड़ ली गयी थी। इसके फलस्वरूप सेनानायकों के पास ठीक तरह से खबर पहुँचने में भी विलम्ब नहीं होता था।

प्रायः दो सप्ताह हुए निकटवर्ती स्थानों में शत्रु के आगमन की सम्भावना जानकर निकोलस नगरवासियों को सावधान

करने के लिए स्थेल गया है—आज भी लौटकर नहीं आया। जाने के समय वृद्ध अपने प्रिय सहचर, बाघ की तरह मुँह वाले दो पहाड़ी कुत्तों को साथ लेना न भूला था, क्योंकि ये दोनों बहुत दिनों से उसके अंग-रक्षक का काम करते आ रहे हैं, और इन्हीं विश्वासपात्र मित्रों ने ही एक-दो बार बुड्ढे को मौत के मुँह से बचाया है।

(२)

जिस दिन निकोलस ने घर छोड़ा, उस दिन से बार्थिन की माता बहुत भय के साथ दिन काट रही थी। चर्खे पर सूत कातते-कातते आज इसके मन में यह बात आ रही थी कि विपत्ति के आने में अधिक विलम्ब नहीं है। एक तो भयावने जंगली जानवरों से भरा जंगल, दूसरे प्रुशियन सिपाहियों के आने की संभावना, तीसरे गृहस्वामी दूसरे स्थान में हैं फिर विपत्ति के आने में विलम्ब ही क्या हो सकता है? बुढ़िया बहुत उद्विग्न हो उठी। व्याकुल नेत्रों से लड़की के मुँह की तरफ देखकर कहा, "आज तो उनके लौट आने का दिन है बेटी, इतनी रात बीत गई, अब भी तो दिखाई नहीं पड़े।"

"ग्यारह बज रहे हैं, अब भी पिता लौटकर नहीं आये। तुम तो जानती हो माँ कि सेनाध्यक्ष के साथ खाने बैठने पर पिता को घर आने की बात भूल सी जाती है!" कह कर बार्थिन आरम्भ की हुई रसोई बनाने में लग गई।

"सो तो है" कह कर वृद्धा ने मुँह पर हताश सूचक भाव प्रकट किया।

आधा घंटा बीतते-बीतते दरवाजे की ओर हठात् एक कोलाहल-सा सुन पड़ा। भय और चिन्ता से आत्मविस्मृत वृद्धा के कानों में तो कोलाहल ने प्रवेश नहीं किया, किन्तु कन्या के सजग कानों में वह पहुँचा।

बार्थिन उठ कर खड़ी हो गई। दरवाजे के छेद में कान लगा कर बड़ी सावधानी से सुनने लगी। यह किसकी आहट है? कहाँ से आ रही है? तीक्ष्ण बुद्धिवाली बार्थिन के दोनों भौहों का मध्यम भाग कुछ संकुचित हो गया।

"देखो माँ"—उसने कहा—"वन के भीतर मनुष्यों के पैरों की आवाज सुनाई पड़ रही है। बहुत से मनुष्य हैं—जान पड़ता है आठ-दस आदमी से कम न होंगे।"

"ऐं क्या कहा।" चर्खे से बुढ़िया का हाथ खिसक पड़ा। होठ भय से पीले पड़ गये, सूत से अँगुलियाँ उलझ कर काँपने लगीं। क्या करना चाहिए, क्या करना होगा, इसका कुछ भी निश्चय न कर वह बिलकुल जड़वत् हो गई।

थोड़ी ही देर में, जोर से किवाड़ खटखटाने की आवाज हुई।

"क्या होगा बेटी?" बुढ़िया हाँफने लगी। भीतर से किसी प्रकार की आवाज न पा बाहर से एक ने चिल्लाकर कहा, "जल्दी दरवाजा खोल दो, नहीं तो इसे तोड़ डाला जायगा।"

बार्थिन पत्थर की तरह निश्चल भाव से खड़ी हो सारी बातें सुन रही थी—एक क्षण तक न जाने क्या इरादा कर बन्दूक की तरफ देखती रही, दूसरे ही क्षण उसे कपड़े में छिपाकर फुर्ती से द्वार की ओर बढ़ी।

"तुम कौन हो? क्या चाहते हो?"

बाहर से उत्तर आया—"प्रुशियन सैनिक हैं, दरवाजा खोलो, फिर जो कहना होगा, कहेंगे।"

"तुम्हारा वक्तव्य सुने बिना नहीं खोल सकती, यहाँ किस इरादे से आये हो, बताओ।"

"बन में रास्ता भूलकर हमारे सिपाही तितर-बितर हो गये हैं, दरवाजा खोल दो—नहीं तो यह तोड़ दिया जायगा।" रूखे स्वर में उत्तर आया।

वार्थिन ने कुछ देर तक न जाने क्या विचार किया, हाथ जोड़ कर ऊपर देखते हुए न जाने क्या प्रार्थना की, इसके बाद एक लम्बी साँस छोड़ कर फाटक की अर्गला खोल दी।

अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित कई एक सैनिक बाहर खड़े थे। साहसपूर्वक युवती ने पूछा, "इतनी अंधेरी रात में यहाँ पर आप लोग क्या चाहते हैं ?"

सेनाध्यक्ष ने आगे बढ़कर कहा, "तितर-बितर होकर भटकते हुए हम लोग यहाँ पर आ पहुँचे हैं। रास्ता खोजने में नहीं मिलता, दिन भर आज बिना खाये-पिये बीता। हम लोगों को कुछ खाने को मिलना चाहिये।"

वार्थिन ने स्निग्ध दृष्टि से सेनाध्यक्ष की ओर देखा, 'देखिये, बुड्ढी माँ को लेकर मैं घर में अकेली हूँ, मेरे पिता दूसरी जगह गये हैं। ऐसी अवस्था में आप जैसे अतिथि की सेवा करना मेरे लिए बहुत ही कठिन है, मैं दुखित हूँ कि—"

युवती के कोमल कण्ठ-स्वर से सेनाध्यक्ष का मिजाज नर्म पड़ गया, उसकी बात खतम होने के पहले ही बोल उठे—"तुम्हें डरने की कोई बात नहीं, हम लोग तुम्हें किसी प्रकार अनिष्ट पहुँचाने के अभिप्राय से यहाँ पर नहीं आये हैं। भूख-प्यास से व्याकुल होकर आये हैं। तुमसे प्रार्थना है कि कुछ खाने के लिये दो, नहीं तो हम लोग मर जायँगे।"

देश का शत्रु आज आश्रय चाह रहा है। वे नहीं जानते कि वे कहाँ पर आश्रय की भिक्षा माँग रहे हैं। यदि आश्रय न दिया जाय तो जोर करके इसे दखल करना इन लोगों के लिये कोई मुश्किल नहीं, और ऐसी अवस्था में कन्या और माता की जिन्दगी भी बिलकुल खतरे से खाली नहीं हो सकती। दूसरी ओर इन्हीं देश के शत्रुओं के विरुद्ध उसका बुड्ढा बाप आज

सारी शक्ति लगा रहा है, इन्हीं देश-शत्रुओं के विरुद्ध उसके स्वामी ने आज प्राण उत्सर्ग किया है। तो भी आश्रय देना होगा, किन्तु इसके बाद ?

युवती ने रास्ता छोड़ कर कहा, "भीतर चले आइये।"

प्रुशियन सैनिकों ने घर में प्रवेश किया, कमरे की रोशनी की चमक में उनके बर्फ से ढके हुए हैट तारों की तरह चमकने लगे।

टेबुल के पास रखे हुए बेंच की तरफ अँगुली का इशारा करके बार्थिन बोली, "आप यहाँ पर आराम कीजिये, मैं जल्दी ही खाना तैयार करके लाती हूँ। तब तक यहाँ बियर, (जौ की शराब) पीकर प्यास दूर कीजिये।" फुर्ती से कमरे में लटकते हुए छीके पर से कुछ मांस उतार कर खण्ड-खण्ड किया और गर्म जल में छोड़ दिया। भूखे-प्यासे सैनिक तृष्णा भरी निगाह से रसोई बना रही युवती के गठीले हाथ की संचालन-क्रिया देखने लगे।

प्रुशियन सैनिक हैट, बन्दूक आदि मेज पर रख कर शान्त बच्चे की तरह भोजन की प्रतीक्षा करने लगे।

(३)

निकोलस की पत्नी इतनी देर तक डर से अधमरी हो रही लड़की के कार्य-कलाप को देख रही थी। अब सिपाहियों को शान्त भाव से बैठे हुए देखकर कुछ-कुछ ढाढ़स बँधा और उसने चर्खा कातने में मन लगाया। फिर भी घूम-फिर कर उसकी दृष्टि सिपाहियों की ओर चली जाती थी और मन भी उसी के साथ बेचैन हो उठता था। हठात् दरवाजे पर गों-गों की आवाज सुनाई पड़ी—ऐसा जान पड़ा मानों कोई हिंस्र जन्तु मनुष्य की खोज पाकर सूँघ रहा है और घर-घर साँस ले रहा है और छोड़ रहा है।

जर्मन सेना-नायक को बर्छा उतार कर दरवाजे की ओर बढ़ते देखकर बार्थिन बोली—"दरवाजा खोलने की जरूरत नहीं, ये और कुछ नहीं लकड़बग्घे हैं, आप ही लोगों की तरह भूख से व्याकुल होकर बेचारे खून और माँस की तलाश में फिर रहे हैं।"

किन्तु संशयालु सेनाध्यक्ष दरवाजा खोले बिना न रह सका, उसने देखा कि युवती की बात सोलह आना सच है। पीले रंग के दो बाघ वन के अंधकार में मिले जा रहे हैं। फिर आसन ग्रहण कर उसने कहा, "माफ करना, अपनी आँख से बिना देखे मैं निश्चित नहीं हो सका।"

मीठी मुस्कराहट के साथ बार्थिन ने कहा, "जाने दीजिये, अब कृपा करके आप लोग आइये, खाना तैयार है।"

क्षुधा से पीड़ित सैनिक भोजन करने लगे—बार्थिन स्निग्ध दृष्टि से उनका खाना देखने लगी!

पात्र में परोसी हुई रोटी और मांस उनके लिए रोज प्राप्त होने वाला साधारण खाद्य पदार्थ है। भूखे लोगों को आज वह ऐसी स्वादिष्ट और दुर्लभ वस्तु थी, मानो जीवन में ऐसी चीज खाने को न मिली हो। ऐसी चीज को देने वाली बार्थिन—क्या ही आनन्द है! स्त्री-हृदय के आनन्द-माधुर्य से युवती के नेत्रों के कोने में आँसू चले आये। चाहे ये देश के शत्रु हों या विदेशी, किन्तु भूखे-प्यासे को अन्न-जल देना, आश्रयहीन को आश्रय देना, शत्रु-मित्र की भेद रेखा से ऊँची, बहुत ऊँची बात है।

देखते-देखते नारी-सुलभ दया से और प्रेम से उसकी छाती भर उठी, उसका आन्दोलित पर दुःख से आर्द्र चित्त इन शत्रुओं के कल्याण का इच्छुक हो गया। बार्थिन ने स्थिर किया कि पिता के आने के पहले ही वह सब बातें खोल कर

कह कर उन लोगों को सावधान कर देगी और उन्हें भाग जाने का अवसर देगी।

भोजन से तृप्त सैनिक ने कृतज्ञ दृष्टि से युवती की ओर देखकर पेय पदार्थ माँगा। कृतज्ञ सेनापति आनन्द से गद्गद् हो बार्थिन के सामने एक बहुमूल्य अँगूठी रखकर बोला, "आज रात के उपकार को जीवन भर याद रखूँगा। कृतज्ञता का यह साधारण चिह्न अपने पास रखिये।"

कृतज्ञता का चिह्न रखने की इच्छा बार्थिन को न थी, किन्तु अँगूठी की ओर दृष्टि मात्र पड़ते ही वह सिहर उठी—हीरक फलक पर जो दो अक्षर चमचमा रहे थे, वे उसके हृदय में अङ्कित अक्षरों से बहुत अधिक उज्ज्वल थे।

सेनापति बोला, "आप दुविधा में न पड़ें। उपहार की वस्तु चाहे साधारण से साधारण भले ही हो किन्तु उसके चारों तरफ जो जय-गौरव खचित है, वह असाधारण है। आज आपने विजयी के प्राण बचाये हैं, इसलिए उनके गौरव-चिह्न पाने की अधिकारिणी भी आप हैं। बहुत चालाकी के साथ इस अँगूठी के पहनने वाले को बन्दी किया था?"

युवती ने साँस रोककर पूछा, "इसके बाद?"

सेनापति बोला, "कल उसे जान से मार डाला।"

युवती ने फुर्ती से कमरा छोड़ दिया। वह यह कह कर यहाँ से चलती हुई कि "बैठिये शराब लाती हूँ।" यदि सेनापति लक्ष्य करता, तो उसे दिखाई पड़ता कि बार्थिन का स्वर भर्राया हुआ है, उससे वेदना टपक रही है।

जमीन के नीचे एक घर था, वह कमरा छोटा था, उसमें चार गुम्बज थे। लोगों का कहना है कि फ्रेंच-क्रांति के समय शत्रुओं के हाथ से बचने और उन्हें कैद कर रखने के उद्देश्य से यह घर बनाया गया था।

इस कमरे में प्रवेश करते ही बार्थिन जमीन पर गिर कर लोटने लगी। एक क्षण के बाद उसके नेत्रों के सामने की सारी दुनिया बदल गयी। किन्तु नहीं, शोक करने, रोने-धोने का समय नहीं है, स्वामी की हत्या करने वाला अब भी जीवित है, उसी के घर में, उसी के दिये हुए भोजन से पेट भर कर बिलकुल निश्चित बैठा हुआ है ! कुछ ही देर पहले वह शत्रु की कल्याण-कामना कर रही थी, किस प्रकार पिता के बिना जाने ही इन्हें जंगल पार भेजकर इन्हें बचा लूँ, यही सोच विचार रही थी। किन्तु इस समय ?

बार्थिन उठ बैठी, सहसा उसके मन में ऐसा जान पड़ा मानो उसके स्वामी का सर्वाङ्ग खून से लथ-पथ हो रहा है। वह उसके नेत्रों के सामने खड़ा होकर लाल-लाल आँखें किये चुपचाप इशारे से कह रहा है 'प्रतिहिंसा।'

उसका अश्रुपूरित हृदय-सागर उन्मत हास्य करता हुआ गर्जन कर उठा। फुर्ती से उठ शराब से भरे हुए पात्र को हाथ में लेकर उसने कमरे को छोड़ दिया।

(४)

खूब ठूस-ठूस कर खाने और शराब पीने के कारण सिपाहियों को नींद और नशा ने साथ ही धर दबाया। वे देखते-देखते हाथ पर सिर रखकर, मेज से टिक-टिक कर सोने लगे। बार्थिन सेनापति से कहने गई—"आप आग के पास जाकर सो रहें, वहाँ काफी जगह है, आराम से सो सकेंगे। मैं माँ को लेकर ऊपर के कमरे में सोने जा रही हूँ।"

चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ है, नीचे के तले की नीरवता नींद में पड़े हुए सिपाहियों के नाकों के बजने से भंग हो जाती है। सहसा सदर दरवाजे के पास बन्दूक की आवाज सुनाई पड़ी, इसके बाद चार-पाँच बार आवाज हुई।

नींद से जगे हुए सिपाहियों ने अभी यह समझा ही नहीं था कि बात क्या है इसके पहले ही बार्थिन घबराई हुई दौड़ती आई। उसके कपड़े इधर-उधर हो रहे थे, नंगे पाँव, हाथ में एक बत्ती लिए हुए थी।

गुम्बज वाले कमरे की तरफ उँगली का इशारा करके हाँफती हुई बोली, 'जल्दी से आप लोग इस घर में छिप जायँ। लगभग एक सौ फ्रांसीसी सिपाही इधर ही आ रहे हैं। इस समय आप लोगों की तो जान जायगी ही, साथ-साथ हम लोगों का भी सर्वनाश हो जायगा।'

युवती के शंका-चकित भाव को देखकर एवं बन्दूक की आवाज सुनकर हाल ही सोये हुए सिपाही भौचक्के से हो गये थे। अब सभी एक स्वर से चिल्ला उठे—"क्या, किस तरफ छिपना होगा ? जल्द ही चलिये, अबकी बार जान बची तो आपको काफी इनाम मिलेगा।"

मन ही मन इनाम को कोसती हुई युवती ने गुप्त-गृह के दरवाजे को खोल दिया और हाथ की बत्ती को ऊँची करके कहा—"इधर दरवाजा है, जल्दी कीजिये, जल्दी।"

मन्त्रमुग्धवत् सभी सिपाही एक दूसरे को ढकेलते-ढकेलते गुप्त-गृह में घुसने लगे। कमरे में चले जाने पर बार्थिन फुर्ती से लोहे के मजबूत दोनों किवाड़ों को बन्द कर परितृप्ति के उच्छ्वास से पागल की तरह हँस पड़ी।

प्रतिहिंसा लेने की चिन्ता में महाशोक का जो समुद्र अब तक प्रकट नहीं हुआ था, अरण्य के स्तब्ध अन्धकार में उमड़ पड़ा। घर के आँगन में अकेली बैठकर मरे हुए स्वामी के वियोग में बहुत देर तक रोती रही।

घर की दीवार में लगे हुए ब्रेकेट के ऊपर जो एक छोटी-सी घड़ी थी वह टिक-टिक शब्द करती हुई समय का माप

दे रही थी। भीगे हुए नेत्रों से घर में घुस कर बार्थिन ने देखा कि रात के ग्यारह बजे हैं। "पिता के तो लौटने का समय हो गया; आज इतनी देर क्यों हुई?" युवती अधीर होने लगी।

सहसा दीवार के भीतर से मनुष्यों की बातचीत का शब्द सुनाई पड़ा। इतनी देर के बाद मूर्ख जर्मन सिपाहियों ने उसके कौशल को समझ लिया है, यह समझने में उसे देर न लगी। भीतर से किवाड़ पर जोरों से पदाघात होने लगा, लेकिन बार्थिन के चेहरे पर जरा भी घबराहट न दिखाई पड़ी। वह सैनिकों के व्यर्थ-प्रयास को देखकर हँसी। किन्तु उसकी हँसी पर इस बार उत्तेजना का जोर न पहुँचा, वह अत्यन्त मलीन मुर्दे की हँसी थी। युवती के मर्मस्थल का मन्थन करके एक लम्बी गर्म साँस, इस क्षीण हास्य के अंतराल से निकल कर रात्रि की वायु में मिल गई।

(५)

"कौन? पिता आ गये?"

"कौन बेटी बार्थिन? इतनी रात को मेरा रास्ता देखती हुई बैठी हो! हाँ मैं ही हूँ—दरवाजा खोलो।"

दूर से पिता के शरीर-रक्षकों के भूँकने की आवाज को सुन कर युवती ने जान लिया कि पिता आ रहे हैं। उसने दरवाजा खोल दिया और वृद्ध की छाती में मुँह लगा कर रो उठी।

'रोती क्यों हो बेटी? देरी हो गयी थी इसी से क्या?" प्रेमपूर्वक बुड्ढे ने लड़की के मस्तक को चूम लिया।

"पिता"—दोनों उदास नेत्रों को उठाकर युवती ने वृद्ध की ओर देखा। किन्तु जो बात कहने जा रही थी, वह न कह सकी, सँभल कर बोली, "पिता, आज जर्मन सेनापति को

कैद कर लिया है। सेना-सहित वह इस समय हम लोगों के गुप्त-गृह में विश्राम कर रहा है।"

वृद्ध अवाक् होकर कुछ क्षण तक कन्या के मुँह की ओर देखता रहा, फिर बोला "सेनापति को! तुमने बन्दी किया है!! क्या कहती हो बार्थिन ?"

युवती ने आरम्भ से लेकर सारी घटना कह सुनाई—किस उपाय से बन्दूक की झूठी फैर करके उन लोगों को डरा दिया, किस तरह कौशल से उन लोगों को गुप्त गृह में बन्द कर रखा है, यह भी कहा। किन्तु इस सेनापति वाली घटना ने उसके हृदय में वेदना पैदा कर दी है, उसे सुनने के पहले ही देश-भक्त वृद्ध खुशी के मारे उछल पड़ा। अपने आनन्द से उसने समझा कि लड़की पिता के देर से आने के कारण नहीं रो रही थी, किन्तु सेनापति जैसे एक बड़े देश-शत्रु को कैदी बनाने के आनन्द में रोती थी। दोनों हाथ से उसने कन्या को अपनी छाती से लगा लिया। उसे ऐसी इच्छा होने लगी कि अभी स्थेल जाकर उस आनन्ददायक सम्वाद को कह सुनाऊँ।

पिता के इतने उत्साह और आनन्द में बार्थिन ने बाधा नहीं पहुँचायी। वह बोली, "पिता जाओ. लेविङ्ग को खबर दे आओ। लेकिन तुम थक गये हो, बिना खाये-पिये जाने न दूँगी।"

इतनी बड़ी खबर को सुनकर खाने-पीने में समय नष्ट कर सके इतना धैर्य निकोलस में न था, इसलिए जैसे तैसे खाना खाकर, अपने दोनों अंगरक्षक कुत्तों के साथ, वह शीघ्र रवाना हुए।

कैदी सैनिकों ने पिता-पुत्री की बातचीत सुन ली थी। अब आसन्न-मृत्यु को देखकर, वे घर में बड़े जोर से गर्जन-तर्जन कर

उठे। बार्थिन पर गोलियों की बौछार, किवाड़ों पर पदाघात करने लगे। कुछ देर तक इस प्रकार निष्फल चेष्टा के बाद वे खिड़की के छेद से बार-बार बन्दूक की आवाज करने लगे—उन्हें आशा हुई कि कदाचित् कोई दूसरा भूला भटका जर्मन सिपाही इस शब्द को सुनकर सहायता के लिये आ जाय।

बार्थिन दोनों बाँहों पर सिर रखकर शून्य दृष्टि से अंधकार की ओर देखने लगी। कैदी सिपाहियों के उस कोलाहल से बिलकुल उदासीन उसका चित्त, उस समय कहाँ-कहाँ चक्कर खा रहा था, इसे कौन कह सकता है ?

प्रात:काल होने के साथ ही बर्फ जमे रास्ते को आनन्द ध्वनि से गुँजाते हुये फ्रांसीसी सिपाहियों ने निकोलस के मकान को घेर लिया। बड़ धूम-धाम से गुप्त घर के रन्ध्र मुख की ओर बढ़कर लविङ्ग साहब ऊँची आवाज में बोले "जर्मन सेनापति के साथ फ्रांसीसी सेनानायक बातचीत करना चाहते हैं।" बिल्कुल सन्नाटा—कोई उत्तर न मिला।

लेविङ्ग ने अपनी बात को फिर दुहराया। तो भी भीतर से किसी तरह की आहट न सुनाई पड़ी।

क्या उपाय किया जाय ? ऐसी अवस्था में उस माँद जैसे घर में जाना भी खतरे से खाली न था। ऐसा जान पड़ता था कि गुप्त कमरे की सीढ़ियों से तहखाने में चले गये थे। वहाँ से उन्हें बाहर निकालने के पहले बहुत से फ्रांसीसी सैनिकों की जान जाने की सम्भावना थी। कुछ देर तक सोचने-विचारने पर लेविङ्ग ने एक रबर का पाइप लिया और अपने सिपाहियों को हुक्म दिया कि इसके द्वारा पानी चढ़ाकर इस छेद से कमरे के भीतर पहुँचाओ।

आध घंटा बीतते ही अभीष्ट परिणाम निकला। भीगी हुई देह को लेकर जर्मन सेनापति हाँफते-हाँफते बोला, "हम लोग डूब रहे हैं। जल रोक लो, फ्रेंच सेनापति के साथ हम बात करना चाहते हैं।

"तो आप लोग आत्म-समर्पण करने को तैयार हैं ?" लेविङ्ग ने अग्रसर होकर पूछा।

"हाँ, बिलकुल राजी हैं, शीघ्र जल रोक लीजिए। हम लोग अभी हथियार रख देते हैं।

जल रोक लिया गया, एक-एक करके छः जर्मन सिपाही भीगे कपड़े, नंगे पाँव, भय से काँपते हुए बाहर आकर खड़े हो गये, लेविङ्ग ने अपने हाथ से उन्हें कैद करके उन्मत उल्लास से 'हिप-हिप हुर्रे' की आवाज से आकाश गुँजा दिया।

बार्थिन पत्थर की मूर्ति की भाँति एक ओर खड़ी थी—बिल्कुल निरुत्साह, निरानन्द और म्रियमाण होकर। जंजीर से जकड़े हुए जर्मन सेनापति ने एक बार उसकी तरफ दखा, उस दृष्टि का अर्थ "धोखेबाज औरत ! इस तरह से धोखा दिया जाता है ?"

बार्थिन ने उस दृष्टि को देखा, उसमें छिपे हुये अर्थ को भी समझा—किन्तु उसकी उदास आँखों में हिंसा व लज्जा इनमें कोई भी न दिखाई पड़ा।

लेविङ्ग आगे बढ़कर बोला, "आपके ही बुद्धि-कौशल से फ्रांसीसी सिपाहियों को इतना बड़ा गौरव पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसका उपयुक्त पुरस्कार हम लोग आपको प्रदान करेंगे।"

बार्थिन के दोनों गालों से होकर आँसुओं की बूँदें टप-टप गिर पड़ीं। संयत, स्थिर तथा वेदना-कातर स्वर में उसने कहा,

"मोशिये लेविंग ! मैं जर्मन सेनापति के हाथों, कल ही, उनका बड़ा भारी पुरस्कार पा चुकी हूँ ! यह देखिए उनका पुरस्कार, मेरे पिता का दिया हुआ विवाह-यौतुक, जर्मन सेनापति के हाथ मेरे मारे गये स्वामी की स्मृति-चिह्न यह अँगूठी !"

"हा भगवान !" जर्मन सेनापति चिल्ला उठा। लेविंग व्यथित, विस्मित दृष्टि से युवती की ओर देखने लगा। वृद्ध निकोलस, विजय के आनन्द में भूल कर, अभी तक लड़की की ओर देख नहीं सका था—एक क्षण में सारी बातें आँखों के सामने खुल पड़ने से वह आर्तनाद कर उठा—"ओः बार्थिन !"

मृत्यु भी प्यारी है

बंगाल दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया जायगा, यह घोषित कर दिया गया था। इसके विरोध में बंगाल में एक व्यापक असंतोष ही नहीं था वरन् पूर्ण क्षुब्धता के साथ एक आन्दोलन तीव्र गति से चल रहा था। सारे बंगाल में एक बिजली-सी दौड़ गई थी। सर्व प्रथम गुलामी की जंजीर पहनने वाले बंगाली लोगों ने ही ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह का झंडा बुलन्द किया। वे यह कभी नहीं चाहते थे कि उनका सोने का बंगाल दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया जाय। इसके विरोध में बराबर आन्दोलन होते रहे, सभाएँ होती रहीं जुलूस निकलते रहे। इसी काल में सैकड़ों राष्ट्रीय गीत लिखे गये जो एक हद तक जनता के हृदय के उद्‌गार थे। परन्तु इन सारी चेष्टाओं को कुचलने की भी पूरी चेष्टा होती रही। वह जमाना ऐसा था। जब जुबान से 'बन्देमातरम्' कहना भी गुनाह में शामिल समझा जाता था, और लोग साधु-सन्यासियों को खुफिया पुलिस समझकर चौकन्ने हो जाते थे।

उस समय कलकत्ते में, किंग्स फर्ड नामक प्रधान प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट थे। उन्होंने अपने कार्य-काल में, अपनी कलम से, सैकड़ों देशभक्तों को उत्तेजनात्मक लेखों के लिखने के अपराध में, कड़ी सजाएँ दी थीं। वे राजनैतिक अभियुक्त को सजा देने के लिए प्रख्यात थे, और ऐसे मामलों में इस्तगासे से कहीं अधिक जोश दिखलाते थे। कोई राजनैतिक बन्दी इनकी अदालत से दोष-रहित मुक्त नहीं होता था। उन्होंने मजिस्ट्रेट की हैसियत से देश-भक्तों को सजाएँ दीं, वह न्याय का

गला घोंटना था, तथा उनकी सारी कारवाई शैतानी की थी। कुछ दिन बाद वे जिला-जज बनाकर मुजफ्फरपुर भेजे गये, जहाँ उन्होंने अपने अधिकार का पूर्णरूप से दुरुपयोग प्रारम्भ किया। किंग्स फर्ड का जिला जज होना देश-भक्ति के प्रगात-पथ का रोड़ा था, जिसे उखाड़ फेंकना ही युवकों ने श्रेयस्कर समझा। उन्होंने देखा कि किंग्स फर्ड तो अब और तूफान उठायेंगे, अतः हृदय में असंतोष की लहकती आग लिए दो बंगाली नवयुवक श्री प्रफुल्ल कुमार चाकी तथा श्री खुदीराम बोस प्राणों की बाजी लगा उन्हें दण्ड देने के लिए तैयार हो गये। इन नवयुवकों ने किंग्स फर्ड की हत्या करने के साथ साथ यह भी सोच लिया कि उसके बाद वे जंजीर में जकड़े जायँगे, और थोड़े दिनों बाद उनकी नन्हीं-सी गर्दन क्रूर हाथों द्वारा फाँसी की रस्सियों पर लटका दी जायगी, नृशंतापूर्वक।

(२)

दोनों कम उम्र के थे। श्री खुदीराम बोस की उम्र थी केवल सत्रह साल की। अभी उनके दूध के दाँत भी नहीं टूटे थे। उनमें जवानी अभी प्रवेश कर रही थी, उमंगें अभी विकसित नहीं हो पाई थीं, फूल अभी खिला नहीं था, कली के अन्दर कैद हो गन्ध के दम घुट रहे थे। उन्होंने निश्चय किया कि इस समय देवता की पूजा के लिए ऐसे ही पुष्पों की आवश्यकता है, देश की बलिवेदी के लिए ऐसे ही प्राणों का उत्सर्ग वांछनीय है। बस, तैयार हो गये असमय में ही अधखिली कली को मुरझा देने के लिए, प्राणों की आहुति के लिए।

दोनों साहसी नवयुवक मुजफ्फरपुर पहुँच गये। दोनों के लिए स्थान अपरिचित और नया था, फिर भी साहस के पुतलों ने साहस बटोर स्टेशन से निकट वाली धर्मशाला को ही अपने टिकने का स्थान चुना। यह स्थान केवल उनके

रात के सोने भर का था। दिन भर तो वे इसी धुन में व्यस्त रहते थे कि किंग्स फर्ड कहाँ रहते हैं, कब बाहर निकलते हैं, उनकी गाड़ी कैसी और किस रंग की है। इसके लिये वे कभी किसी खेल के मैदान में जाकर बैठते, कभी किसी दुकान पर चक्कर लगाते, कभी सड़कों की धूल छानते। बहुत परिश्रम के पश्चात् उन्हें पता लगा कि अमुक रंग की मोटर में किंग्स फर्ड घूमने निकलते हैं और अमुक दिशा में जाते हैं। समय और दिशा का निश्चित ज्ञान हो जाने पर, उन्होंने निश्चित किया कि घूमने जाते समय ही उन पर बम छोड़ इनके प्राण-पखेरू उड़ा दिये जाँय।

(३)

बस, तीस अप्रैल सन् १९०८ ई० की अँधेरी रात थी। साढ़े आठ बज चुके थे। प्रफुल्ल चाकी के साथ खुदीराम बोस पेड़ की ओट में, अँधेरे में बड़ी सतर्कता से, इच्छुक नयनों से निहार रहे थे। अचानक एक गाड़ी सरकती हुई उन्हीं की ओर चली आ रही थी। उन लोगों ने देखा कि वह गाड़ी वही है, जिसकी प्रतीक्षा वे इतनी देर से कर रहे थे। बात यह थी कि उस गाड़ी का रंग भी वही था, जो जिला जज किंग्स फर्ड की गाड़ी का था। उन लोगों ने शिकार को फँसा समझा और अपने बम को सम्हाल लिया। गाड़ी के निकट आते ही, उन्होंने बम चला दिया जिसकी धड़ाके की आवाज सारे शहर में सुनाई दी और वे स्वयं भाग निकले।

थोड़ी देर के बाद, इस दुर्घटना की खबर सारे शहर में बिजली सी फैल गयी! दैवयोग से जिस जज को वे लोग मारना चाहते थे, वह गाड़ी उसकी नहीं बल्कि वह गाड़ी वहाँ के वकील श्री कनेडी की थी, जिसका रंग किंग्स फर्ड की गाड़ी के रंग का सा ही था और उस दिन उसमें श्रीमती कनेडी तथा कुमारी

कनेडी थीं जो शीघ्र ही वहीं ढेर हो गयीं। इसको विधि का विधान कहते हैं। सारी तैयारी की गई जिला-जज की हत्या की, और हत्या हुई दो निरीह अबलाओं की। परन्तु उन नवयुवकों को इसका क्या पता था! उन्होंने तो सीधे अपनी राह ली थी। अपनी सफलता पर फूले नहीं समाते थे।

इधर हत्या की सूचना मिलते ही पुलिस ने सारा शहर घेर लिया, तलाशियों की धूम मच गयी। इधर खुदीराम रात भर भाग कर मुजफ्फरपुर से पचीस मील की दूरी पर वैनी (वर्तमान पूसा रोड स्टेशन) पर पहुँच गये थे। परन्तु उनके भाग्य देवता साथ-साथ लगे हुए थे। अदृष्ट से कौन बच सकता है।

सुबह हो चली थी। रात भर के थके, बिखरे बालों और अस्त-व्यस्त रूप को लिये भूखे खुदीराम स्टेशन के निकट ही एक बनिये की दुकान पर लाई-चने खरीदने के गरज से गये थे। उन्होंने स्टेशन मास्टर को कहते सुना—'देखो, मुजफ्फरपुर में दो मेमों की हत्या करके मुजरिम लापता हो गया है। हो सकता है वह इसी ट्रेन से कहीं जा रहा हो!' और उस दुकान पर भी यही चर्चा थी कि मुजफ्फरपुर में दो मेमें मारी गयी हैं, और मारने वाला भाग निकला है। इन बातों को सुन कर खुदीराम चौंक उठे। उनके पैर के तले की जमीन खिसक गई। उन्हें यह जानकर बड़ा आश्चर्य तथा क्षोभ हुआ कि किंग्स फर्ड के स्थान पर दो मेमें मारी गयी हैं। अब उन्हें काटो तो खून नहीं! आवेश में अचानक उनके मुँह से चीख निकल पड़ी—'क्या किंग्स फर्ड नहीं मरा?' इसे सुन दुकान पर बैठे लोगों ने खुदीराम की ओर सतर्क नेत्रों से देखा और पाया कि उसके बाल अस्त-व्यस्त हैं, चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही हैं और किसी भयानक दुर्घटना की छाप उस पर झलक

रही है। उन लोगों को निश्चित रूप से सन्देह हो गया कि, हो न हो, यही हत्यारा है, जो यहाँ तक भाग निकला है। बस लोग पकड़ने को दौड़ पड़े। वे भागे करीब तीन मीलों तक। पुलिस ने उनका पीछा किया। खुदीराम के पास तीन कारतूस और एक पिस्तौल भी थी, जिससे वे लोगों को डराते थे, उनका नाहक उपयोग नहीं करना चाहते थे। परन्तु उनकी सारी कोशिशें व्यर्थ हुईं और दिन होने के कारण वे अनगिनत निगाहों से ओझल नहीं हो सके और पुलिस के सिपाहियों ने उन्हें पकड़ लिया। साम्राज्यवाद के गुण्डों से यह नन्हा-सा बालक कब तक बचता! उस समय का दृश्य अजीब था! जिस जनता का राज्य लेने के लिए शिशु ने यह महान व्रत लिया था, उसी ने उसे पकड़कर साम्राज्यवाद के जल्लादों के हाथों सौंप दिया।

(४)

अब खुदीराम बोस मुजफ्फरपुर जेल की चहारदीवारी के भीतर बन्द थे और उन पर हत्या का अपराध लगा। बाजाब्ता मुकदमा चलने लगा। साम्राज्यवाद के विरुद्ध बम फेंकना कितनी बड़ी धृष्टता थी! यों तो साम्राज्यवाद के तरकश में बहुत से अस्त्र थे, परन्तु इस अपराध के लिए केवल एक ही सजा थी, मौत—जल्लाद के हाथ की मौत। न्याय का पर्दा रचा गया। सरकार की ओर से भी धुरन्धर बैरिस्टर खड़े हो गये। परन्तु खुदीराम के लिए कोई वकील न मिला। केवल कालीदास बोस ही ऐसे व्यक्ति थे जो निडर हो पैरवी करने को तैयार हो गये और पैरवी करने से न चूके। परन्तु खुदीराम को वकालत की क्या आवश्यकता थी! उन्होंने तो स्वीकार ही कर लिया था कि उन्होंने ही बम फेंका था। अन्त में हुआ वही

जो होना था। खुदीराम को फाँसी की सजा दी गयी। अपील से भी यह सजा बहाल रही।

परन्तु बड़ी-बड़ी आँखों एवं काले घुँघराले बालों वाले किशोर के मुखमण्डल पर हास्य सदा खेलता रहा। उसकी मुख-मुद्रा को देखकर कोई भी नहीं कह सकता था कि यह एक फाँसी का कैदी है। फाँसी होने से एक दिन पूर्व की घटना है। जेल के डाक्टर ने खुदीराम को खाने के लिये एक छोटा-सा आम दिया। खुदीराम ने उसे चूसकर और उसके छिलके को फूँककर ज्यों-का-त्यों खिड़की पर रख दिया। डाक्टर साहब ने आकर देखा, आम ज्यों-का-त्यों पड़ा है। पूछा—"क्यों, अभी तक आम नहीं खाया ?"

उन्होंने हँसी दबाते हुए कहा—'खा तो चुका।'

डाक्टर ने कहा—'कहाँ, अभी तो यह ज्यों-का-त्यों पड़ा है।' और खिड़की की ओर बढ़ आम हाथ में उठा लिया, जो केवल छिलका ही था, रस और गुठली गायब थी। खुदीराम खिलखिलाकर हँस पड़े! डाक्टर साहब यह देख दंग रह गए कि जिस व्यक्ति की दूसरे दिन फाँसी होने वाली है, वह इतना खुश हो! बात यह थी कि उनके लिए वह अमर मृत्यु भी प्यारी थी।

आखिर १९०८ ई० की ग्यारहवीं अगस्त की पुण्य-प्रभात-बेला आ गयी। अभी भगवान् भास्कर की भव्य किरणें निकली नहीं थीं। नहा-धोकर पूजा से निवृत्त हो, हथकड़ियों में जकड़े किशोर खुदीराम फाँसी के तख्ते की ओर बढ़े जा रहे थे। उनके एक हाथ में श्रीमद्भगवद् गीता की पुस्तक थी, और मुँह पर हँसी मानो कर्मयोग की साकार प्रतिमा अग्रसर हो रही हो। उनके काले घुँघराले बाल एवं विशाल नेत्र देव-पुत्र सी उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। वे जानते थे कि कुछ ही

क्षणों बाद यह संसार उनके लिए शून्यवत् हो जायगा, यह पंचतत्व-निर्मित मानव शरीर अपने तत्वों में मिलकर अपना अस्तित्व खो देगा, रह जायगी केवल आत्मा, जो अमर है, न कभी जन्म लेती है और न मृत्यु को प्राप्त होती है। उनके मुस्कराते हुए चेहरे एवं विस्तृत-विशाल ललाट से प्रतीत होता था, मानो गीता का सम्पूर्ण ज्ञान उन्हीं में आ गया हो। खुदीराम लाकर फाँसी के तख्ते पर खड़े किए गये। फाँसी की रस्सी उनके गले में जकड़ी गयी, सुपरिण्टेंडेंट की रूमाल हिली और जल्लाद के खटका खींचते ही वे गड़ाप से नीचे झूल गये। ये सारी क्रियाएँ कुछ क्षणों में ही हुईं और उनके प्राण पखेरू हँसते-हँसते उड़ गये।

अन्त में एक सुसज्जित शय्या पर खुदीराम को, मस्तक में सुगंधित मलयागिरि चन्दन लगाकर श्रद्धांजलि के रूप में फूल-मालाओं से आवेष्टित कर शयन करा दिया गया। इस महा-निद्रा की दशा में उनकी अधखुली आँखों में मानो जीवन-ज्योति झलक रही थी, उनकी आकृति मुस्करा रही थी, उनके विस्तृत ललाट प्रदेश में घुँघराले बाल अस्त-व्यस्त होकर भी जैसे उनकी सुन्दरता को द्विगुणित कर रहे थे। अपार जन-समुद्र दर्शनों को उमड़ा चला आ रहा था, जो श्मशान में जाकर निस्पन्द हो गया।

श्मशान में चिता की रचना की गयी। विहँसते हुए अर्द्ध-उन्मीलित नेत्रोंवाला मृत शरीर चिता की गोद में डाल दिया गया। चिता में आग लगा दी गयी, अनेक सुगन्धित पदार्थों एवं घृताहुति से चिता कुछ ही क्षणों में धू-धूकर जल उठी, जिसने सर्वस्व त्यागी अलमस्त शहीद के पार्थिव शरीर को भस्मीभूत कर दिया। उस समय उस धुँधुआती चिता के चारों ओर एक

विराट जन समुदाय था, जो आँखों के आँसू पोंछता, गम्भीर बना, जी खोलकर प्यारे शहीद का अभिनन्दन कर रहा था। अन्त में जनता उसके पावन भस्म के लिए टूट पड़ी। किसी ने उसकी ताबीज बनायी, किसी ने उसे सिर पर मला। एक स्वर्गीय दृश्य था उस समय का।

× × ×

इन लोहे की रीढ़वाले अलमस्तों में महान त्याग, आत्मोत्सर्ग तथा फाँसी को खेल समझने की मनोवृत्ति थी, जिसने जनता को अपनी ओर खींच लिया। स्वतन्त्रता के पुजारियों का उज्ज्वल एवं दिव्य चरित्र, आशा है, करोड़ों भारतीयों को आलोक प्रदान करता रहेगा।

———

देश के लिए

(१)

रात्रि का प्रथम पहर है। सारा संसार निद्रा की गोद में सिर डालकर सोने जा रहा था। पर वे जग रहे थे, वही अबीसीनियन, उनके सिर पर इटली की तोपें गरज रही थीं। हृदय-हृदय में, प्राण-प्राण में आकुलता थी और थी नेत्र-नेत्र में असन्तोष की आग। सब यही कह रहे थे, क्या होगा ? क्या सदियों से स्वतन्त्र मातृ-भूमि दासता की बेड़ी में जकड़ उठेगी ?

उस छोटे से मकान के एक कमरे में सोये हुए गेटो ने भी हलीदा से यही कहा। गेटो वीर था, युवक था, साहसी था। मातृभूमि की दासता की बात सोचते ही, उसके नेत्र जलने लगे। उसने एक लम्बी उसाँस ली और फिर कहा, "हलीदा ! तुमने कुछ सुना ? मैं कल युद्ध पर जा रहा हूँ।"

हलीदा चुप रही। उसके भी नेत्र जल रहे थे। उसका भी हृदय धौंकनी बनकर गरम साँसें उँड़ेल रहा था, किन्तु फिर भी वह चुप थी। मानो भीतर ही भीतर देश की वेदनाग्नि से जली जा रही हो !

वह केवल गेटो की ओर देखकर रह गई।

गेटो पुनः बोल उठा, "हलीदा !' तुमने और कुछ भी सुना ? मैं इस युद्ध में सेनानायक बना कर भेजा जा रहा हूँ।"

'तो यह कौन सी बात है !"—हलीदा ने व्यथित स्वर में उत्तर दिया, 'इस समय जब मातृभूमि पैरों से कुचली जा

रही है, सिपाही, नायक और सम्राट् सब का एक ही कर्त्तव्य है देश के लिए जूझ मरना।'

'क्या तुम्हारा भी हलीदा ?'—गेटो ने व्यंग और हँसी के स्वर में कहा।

हलीदा वेदना से तिलमिला कर रह गई। उसने गेटो की ओर देखा। उसकी आँखों में अपमान की आग थी, असन्तोष की ज्वाला थी।

गेटो सहम उठा और कहने लगा, "क्षमा करो हलीदा! मुझसे भूल हुई। मैं नहीं जानता था कि तुम्हारा हृदय भी देश के अपमान की आग से जला जा रहा है। अब निश्चय ही इटली परास्त होगा, निश्चय ही उसका दर्प धूल में मिलेगा। जब देश की मातायें जाग उठीं हैं तब मातृभूमि को कौन दासता की बेड़ी में जकड़ सकता है ? कौन उसकी स्वाधीनता का अपहरण कर सकता है ?"

गेटो ने प्यार से हलीदा के कन्धे पर हाथ रक्खा।

हलीदा ने गेटो की ओर देखा। उसकी आँखों में स्वाभिमान था, गौरव था और थी उत्सर्ग की भावना।

हलीदा ने उन्हीं आँखों से गेटो की ओर देख कर कहा—"तो कल मैं तुम्हारे साथ युद्ध में चलूँगी!"

"युद्ध में चलोगी!" गेटो ने आश्चर्य के स्वर में कहा।

"हाँ युद्ध में चलूँगी"—हलीदा ने दर्प के साथ उत्तर दिया—"देश-माता जब विपत्तियों से आग्रस्त हो, देश की स्त्रियाँ घर में रहें, यह असम्भव है, और फिर मैं वीर-पत्नी हूँ, तुम युद्ध में जाओ, और मैं घर में रहूँ यह नहीं हो सकता।"

गेटो चुप हो गया। उसे ज्ञात हो गया कि हलीदा के हृदय में भी देश के अपमान की भयंकर आग है। उस रात में पति पत्नी, दोनों सोये या न सोये यह कौन जाने ? किन्तु जब प्रभात

हुआ तब लोगों ने देखा कि गेटो के साथ उसकी पत्नी हलीदा भी युद्ध-स्थल की ओर जा रही है।

उस समय उसकी आकृति पर स्वाभिमान था, त्याग की भावना थी।

युद्ध हो रहा था, भयानक युद्ध। इटली अपनी सम्पूर्ण शक्ति से अबीसीनिया पर टूट पड़ा था। तोपें गरज रही थीं, बमों से लदे हुये वायुयान बरस रहे थे। और बरस रहीं थीं विषैली गैसें! नगर उजड़ गये, गाँव-के-गाँव वीरान हो गये, दिन में ही किसी को दिखाई न पड़ता था। दम-के-दम में अबीसीनियन सैनिक, चेतना-शून्य होकर, भूमि पर गिर रहे थे। किन्तु फिर भी उनकी सेना की पंक्ति न टूटती थी, न हिलती थी, वह पर्वत की भाँति अविचलित थी, स्थिर थी। इटली के दाँत हिल उठे थे, दाँत!

संध्या का समय था, दिन भर लड़ते-लड़ते सैनिक परिश्रांत हो उठे थे, किन्तु फिर भी युद्ध न बन्द हुआ। दिवस के उस अवसान को देख कर दोनों ओर के सैनिक और भी अधिक आवेग के साथ एक दूसरे पर टूट पड़े। मानो सूर्य के तिरोहित होने के साथ-ही-साथ एक दूसरे को संपूर्ण रूप से तिरोहित कर देना चाहते थे।

गेटो पर्वत के एक शिखर पर खड़ा था, कभी वह अस्त होते हुए सूर्य की ओर देखता और कभी शिखर के नीचे पड़ी हुई असंख्य लाशों की ओर। वह परिश्रांत हो उठा था। घाटियों में पड़ी हुई असंख्य लाशों ने उसे और भी अधिक परिश्रांत कर दिया, वह आकुल हो उठा और सोचने लगा इस नर-संहार पर।

सहसा किसी ने पीछे से उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा 'गेटो।'

गेटो ने पीछे मुड़कर देखा, बगल में थैली दाबे हुए एक वृद्ध अबीसीनियन ।

गेटो का हाथ शीघ्र पिस्तौल पर जा पड़ा। उसने उसे सँभालते हुए क्रोध के स्वर में कहा "कौन हो ? क्या चाहते हो ?"

"मैं भी अबीसीनियन ही हूँ गेटो", वृद्ध ने उत्तर दिया— "किन्तु मैं तुमसे पूछता हूँ गेटो यह नर-संहार किस लिये ? देखो सामने, असंख्य मनुष्यों की लाशें पड़ी हुई हैं। क्या तुम्हारे मन में इन्हें देखकर करुणा नहीं उत्पन्न होती ?"

गेटो आश्चर्य-चकित होकर वृद्ध की ओर देखने लगा।

वृद्ध पुनः बोल उठा, "इस नर-संहार से क्या लाभ होगा गेटो ? देखो, गाँव-के-गाँव उजड़ रहे हैं, नगर वीरान होते जा रहे हैं और होता जा रहा है सारा अबीसीनिया जैसे मरुस्थल। इटली वाले अबीसीनिया में आकर तुम्हारा बिगाड़ ही क्या लेंगे ?"

गेटो की आँखें जल उठीं। उसने वृद्ध को झिड़कते हुए कहा, "जा, चला जा मेरी आँखों के सामने से। तू चाहता है मैं मातृभूमि को विदेशियों के हाथों में बेच दूँ ?"

'तुम्हारा भ्रम है गेटो ?'—वृद्ध ने कहा—"कोई न मातृभूमि को बेचता है और न कोई खरीदता है, सब साधते हैं अपना-अपना स्वार्थ। अपने सम्राट ही को देख लो। युद्ध के दिनों में भी वे राज भवन में बैठे हैं और तुम मातृभूमि के नाम पर पर्वतों से टक्करें ले रहे हो। यदि मारे गये तो समझ लो, कोई आँसू तक न गिरायेगा।"

गेटो वृद्ध की ओर देखने लगा। वृद्ध को ऐसा ज्ञात हुआ मानो वह जो कुछ कह रहा है, गेटो को अच्छा लग रहा है। वृद्ध का साहस बढ़ा। वह गेटो के कुछ और अधिक समीप खिसक कर कहने लगा "गेटो, मेरी बात मानो, इटली वालों

को अबीसीनिया में आने दो। वे अबीसीनिया में सुख, शान्ति और सभ्यता का प्रचार करेंगे। सच मानो, गेटो, जितना परिश्रम तुम इस युद्ध में कर रहे हो, उतना यदि इटली वालों की ओर से करते तो आज गवर्नर बना दिये जाते !"

सामने असंख्य लाशों की ढेर ! गेटो का मन उन्हें देखकर पहले ही कायर हो उठा था। वृद्ध की बातों ने उसे और भी अधिक विचलित कर दिया। गेटो मन-ही-मन सोचने लगा, "कह तो रहा है वृद्ध ठीक ही। क्या यह युद्ध मातृभूमि के लिये है ? नहीं सम्राट् के लिये है। विजय होने पर सम्राट् सम्राट् होंगे और मैं रहूँगा साधारण सिपाही। फिर मैं अपना रक्त क्यों बहाऊँ ?" क्यों मातृभूमि के नाम पर अपने प्राणों का बलिदान करूँ ?"

वृद्ध पुनः बोल उठा—'गेटो ! अधिक सोच-विचार न करो। मेरी बात मानो। देखो इस थैली की ओर। इसमें एक हजार थेलर (अबीसीनियन सिक्के) हैं। यदि तुम चाहो तो आज ही ये मिल सकते हैं।"

वृद्ध ने थैली गेटो के चरणों के पास फेंक दी ! सिक्कों की झनझनाहट पर्वत से टक्कर लेती हुई गेटो के मन में समा गई। गेटो ने नेत्रों में लालच भर कर थैली की ओर देखा, कुछ देर तक देखता रह गया।

"ये सिक्के केवल इतने ही काम के लिये हैं गेटो" वृद्ध ने कहा कि—"कल प्रातःकाल तुम अपनी सेना को आधे घन्टे देर से लड़ने की आज्ञा दो। यह तो एक साधारण-सी रकम है गेटो ! भविष्य में तुझे इतनी सम्पत्ति मिलेगी कि तू बहुत बड़ा सम्पत्तिशाली बन जायगा।"

गेटो के हाथ धीरे-धीरे थैली की ओर बढ़े। मातृभूमि चीत्कार कर उठी, पर्वत भी रो उठा, पत्ते-पत्ते भी हिल गये,

घाटियों में कटकर अबीसीनियनों की लाशें भी आँसू बहाने लगीं, किन्तु गेटो के आगे बढ़े हुए हाथ पीछे न फिरे न फिरे !!

प्रभात हो चुका था। सूर्य की आरक्त किरणें अबीसीनिया पर डोल रही थीं और डोल-डोलकर उसे भी बना रही थीं आरक्त, मानो प्रलय और सर्वनाश की सूचना दे रही हो। वास्तव में वे प्रलय और सर्वनाश की सूचना दे रही थीं। इटली की सेना प्रचंड गति से आगे बढ़ी आ रही थी, गरजती हुई, हुँकार करती हुई !! पर अबीसीनियन सैनिक अभी कैम्पों से बाहर भी न निकले थे। रह-रह कर उनके मन में पीड़ा उत्पन्न हो रही थी, रह-रह कर उनके हाथ राइफलों पर जा रहे थे पर अभी उन्हें राइफलों की नलिकाओं में कारतूस भरने की आज्ञा ही नहीं थी। वे विक्षिप्तों की भाँति कैम्पों में घूम रहे थे और इटली की सेना गरजती हुई आ रही थी, राजधानी के समीप !!

गेटो अपने कैम्प में था। सामने थे उसके एक सहस्र थेलर। अबीसीनिया दासता के समुद्र में डूबा जा रहा था, किन्तु वह उन्हीं सिक्कों को निश्चिंत मन से देख रहा था। उसकी आँखों के सामने थे वे दिन जब वह गवर्नर होगा और हलीदा होगी उसके जीवन की रानी। आज भी वह उसकी रानी है, किन्तु उस समय वास्तव में वह रानी होगी, वैभव-शालिनी होगी। लोग उसके भाग्य पर ईर्ष्या करेंगे, ईर्ष्या ! अबीसीनिया डूब रहा है, डूबने दो ! वह सम्राट् के लिये मातृभूमि के नाम पर क्यों अपने सुखों पर पर्दा डाले ? क्यों अपने जीवन को सर्वनाश की आग में झोंके ?

सहसा दौड़ती हुई हलीदा ने कैम्प में प्रवेश किया, उसकी आँखों से चिनगारियाँ फूट रही थीं। आकृति से तेज टपक

रहा था। वह कैम्प में खड़ी होकर कुछ देर तक देखती रही, गेटो सिक्का गिनने में व्यस्त था।

हलीदा गरज उठी। "लज्जा नहीं आती ? इटली की सेना राजधानी के समीप पहुँच गई और तुम रुपये गिनने में व्यस्त हो। बोलो, सेना को आक्रमण करने की आज्ञा तुमने अब तक क्यों नहीं दी।"

"अब संग्राम न होगा हलीदा !" गेटो ने कायरों की भाँति उत्तर दिया। "इटली वाले अबीसीनिया में आकर सुख, शान्ति और सभ्यता का प्रचार करेंगे और हमें तुम्हें बना देंगे वैभव-शाली। देखो इन सिक्कों की ओर।"

"धिक्कार है तुम्हें।" हलीदा ने काँपते हुए स्वर में कहा— "मातृभूमि दासता की बेड़ी में जकड़ी जा रही है और तुम कायरों की भाँति इस प्रकार बातें कर रहे हो ? बोलो, युद्ध की आज्ञा देते हो या नहीं ?"

"पागल बन गई हो हलीदा !" गेटो ने प्रेम प्रकट करते हुए कहा, "कैसी मातृभूमि और कैसा मातृभूमि के लिए युद्ध ? यह मातृभूमि के लिए नहीं है हलीदा, सम्राट् की पद-रक्षा के लिए है। सम्राट् ने अपने पद की रक्षा के लिए हम सबों के जीवन को आग में झोंक कर रणदेवता से वरदान प्राप्त करना चाहा है ! यह न होगा हलीदा ! मैं अब युद्ध न करूँगा और न युद्ध करने के लिए सैनिकों को आज्ञा दूँगा।"

"तो क्या यह तुम्हारा अन्तिम निश्चय है ?"—हलीदा ने पूछा—"हाँ, यह हमारा अन्तिम निश्चय है"—गेटो ने उत्तर दिया—"मैं अब युद्ध न करूँगा !"

"न करो !" धाँय !"—हलीदा की पिस्तौल गरज उठी। गेटो सिक्कों के ढेर पर गिरकर छटपटाने लगा ! हलीदा कैम्प के बाहर थी। उसके मुख पर था, 'नीच ! देशद्रोही !!

हलीदा ने कैम्प-कैम्प में घूमकर जीवन की आग लगा दी, उत्तेजना का सागर बहा दिया। अबीसीनियन सैनिक दौड़ पड़े शत्रुओं की ओर। आगे-आगे हलीदा थी। वह काली की भाँति विकराल बनकर शत्रुओं का रक्त पी रही थी। वह शत्रु का संहार करती जाती थी और अपने सैनिकों को आगे बढ़ने के लिए ललकारती जाती थी। उसके एक-एक शब्द बिजयी बनकर दौड़ रहे थे। रगों में झनझनाहट उत्पन्न हो रही थी। किन्तु सब व्यर्थ! अबीसीनिया लुट गया, मातामही दासता की बेड़ी में जकड़ उठी और हलीदा गिर पड़ी आहत होकर भूमि पर!

आहत होने पर भी उसने अपने सैनिकों को ललकार कर कहा, "मैं स्त्री होकर देश के लिए मर रही हूँ। तुम पुरुष हो। पीछे पैर न हटाओ, आगे बढ़ो और देश के लिए लड़-लड़कर मर जाओ।'

बचे हुए सैनिक फिर शत्रु पर टूट पड़े। उधर वे लड़-लड़कर मर रहे थे और इधर हलीदा दम तोड़ रही थी। कह रही थी, 'चलो अच्छा हुआ, हृदय में गोली लगी! इस हृदय ने ही तो देश-द्रोही गेटो को अपने भीतर छिपा कर रक्खा था।'

वह शेर था

(१)

मेवाड़ के लिये वह एक विचित्र युग था, दुःख का संकट का, सर्वनाश का, उसका जीवन लुटा जा रहा था। उसकी स्वाधीनता कुचल-कुचल कर मारी जा रही थी। राजपूत हुँकार उठे थे, मेवाड़ के कोने-कोने से राजपूत मृत्यु के आलिङ्गन के लिए आगे बढ़ रहे थे। उनका देश, उनकी जननी, उन्हें हाथ उठाकर पुकार रही थी। वे दौड़े जा रहे थे, घर-द्वार छोड़कर, स्त्री-पुरुषों की ममता को भुलाकर? उनका वह देश-प्रेम? वे धन्य थे! इतिहास के पन्ने आज भी उनके देश-प्रेम के गीत गा रहे हैं।

दिल्ली-पति औरङ्गजेब की मेवाड़ पर आँखें लगी थीं। मेवाड़ की स्वाधीनता उसके हृदय को पीड़ा थी, आँखों में काँटा थी। उसने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया था। मेवाड़ ध्वस्त हो रहा था। मुगल सैनिकों के अत्याचार और अन्याय की लपटें मेवाड़ के प्रकृति-जीवन को जलाकर भस्म कर देना चाहती थी, पर मेवाड़ के बाँके लड़ाके राजपूतों की रगों में रक्त शेष रहते हुए क्या यह कभी सम्भव था? राजपूतों ने दौड़-दौड़ कर जान दे दी, पर अपने देश की आन न जाने दी। स्त्री-बच्चे अग्नि को भेंट कर दिये, पर मातामही को शूली पर न चढ़ने दिया। राजपूतों का वह अदम्य साहस, उनका वह देश-प्रेम? उसे देखकर मुगल सैनिकों के छक्के छूट गये थे।

राजपूतों के साथ देश की आन पर जूझने वाले भील भी थे जिन्हें हम आज जङ्गली कहते हैं। उस समय भी वे जङ्गली थे, किन्तु उनका हृदय देश-प्रेम के आलोक से ज्योतित था। जङ्गलों में रहते, फल-फूल खाते, पर जब मेवाड़ के राणा उन्हें देश के नाम पर निमन्त्रित करते, तब वे अपना तीर-कमान लेकर टिड्डी की भाँति दौड़ पड़ते। वे बड़े निर्भय थे, देश-प्रेम के मतवाले थे। देश-प्रेम की शराब पीकर जब वे किसी स्थान पर रुक जाते, तो उनके पैरों को उखाड़ना दुष्कर हो जाता, असम्भव बन जाता। वे अपने विषैले तीरों की मार से शत्रुओं के हृदय को चलनी-चलनी कर देते और स्वयं पर्वत की भाँति सिर उठाकर खड़े रहते।

मातृभूमि के प्रेम में उन्मत्त राजपूतों को भीलों का सहयोग स्वर्ण में सुगन्धि था, शक्ति और पुरुषार्थ का सम्मिलन था! मुगल सैनिक आकुल हो उठे थे। स्वयं दिल्लीपति औरङ्गजेब मस्तक पर हाथ रखकर सोचने लगा था। भीलों ने उसकी आशाओं के दुर्ग को ढहा दिया, उसके हृदय की कसक को और अधिक बलवती बना दिया। मुगल सैनिकों के पैर मेवाड़ में नहीं जमते थे। बेचारे गये थे मेवाड़ की राजधानी को कुचलने। उन्हें क्या मालूम था कि अरावली पर्वत भीलों के रूप में आग की चिनगारियाँ छिपाये हुए है। रात होते ही भील मुगल छावनियों पर टूट पड़ते, खेतों की भाँति शत्रुओं को काटते और उनके साहस को कुचल कर पुनः पर्वत की गोद में छिप जाते। हैरान थे मुगल सैनिक! भीलों के पराक्रम के सन्मुख उनका कुछ चलता ही न था।

(२)

अरावली पर्वत की गोद में बसा हुआ भीलों का वह एक छोटा सा ग्राम था। अरावली पर्वत का बन उस ग्राम में बसे हुए भीलों को भोजन देता और ग्राम के पास में बहती हुई लूनी नदी देती थी पीने को पानी। भील लोग कुछ व्यापार भी करते थे। पत्तों की टोकरी बनाते, मोम और शहद संग्रह करते थे, पर हृदय उनका उज्ज्वल था। उनमें कई गुण थे, पर सबसे बड़ा गुण था, उनका देश-प्रेम! वे देश के नाम पर अपना सर्वस्व बलिदान कर देने के लिए प्रतिक्षण तैयार रहते थे।

जाड़े के दिन थे। चाँदनी रात हँस रही थी। सारा वन और वह अरावली पर्वत भी हँस रहा था। ग्राम के भील सरदार के द्वार पर एकत्र हो आग को घेर कर बैठे हुए थे! चल रही थी आपस में अनेक प्रकार की बातें। सहसा कुछ खटका। एक भील ने आँखें उस ओर घुमाकर देखा, एक अश्वारोही।

अश्वारोही अब अधिक निकट आ चुका था। भीलों के कुछ कहने के पूर्व ही वह घोड़े की पीठ से नीचे उतर पड़ा। उसने भीलों के नियमानुसार भील सरदार को अभिवादन किया! सरदार ने उसके अभिवादन को स्वीकार करके उसे प्रेम से बैठालते हुए पूछा, "कौन हो? कहाँ से आ रहे हो?"

"मैं मेवाड़ के राणा का दूत हूँ सरदार!" अश्वारोही ने उत्तर दिया—"राणा ने हमें आपके पास भेजा है।"

मेवाड़ के पूज्य राणा! उनका नाम सुनते ही भील सरदार ने अपना मस्तक झुका लिया। दूसरे भीलों ने भी उसका अनुगमन किया।

भील सरदार ने पूछा, "क्यों दूत, राणा ने क्या तुम्हें हमारे पास भेजा है ?"

"मेवाड़ आज संकट में ग्रस्त है सरदार !" दूत ने उत्तर दिया "मुगल सम्राट् औरङ्गजेब ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया है। उनकी जन्म-भूमि को आज अरावली पर्वत की गोद में बसने वाले भीलों की आवश्यकता है। बोलो सरदार ! क्या कहते हो ? 'जननी-जन्म भूमि की सेवा के लिए ही मेवाड़ के राणा ने तुम्हें याद किया है ?"

भील सरदार की भौहें चढ़ गईं। अन्यान्य भीलों के रगों में भी रोष जागृत हो उठा। सरदार ने आँखें गुरेर कर कहा 'मेवाड़ की भूमि का अपमान, हमारे अरावली पर्वत का अपमान, हम इसे कभी भी सहन न कर सकेंगे। मेवाड़ के राणा के आदेश पर अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे।"

"तो फिर तैयार हो जाओ सरदार !" दूत ने शीघ्रता के साथ कहा।

सरदार ने आदेश दिया। नगाड़ा बज उठा। देखते-देखते तीन-चार सहस्र भील एकत्र हो गए। सब के हाथ में तीर कमान थे। कुछ देर के पश्चात् उस चाँदनी रात में गाँव की भील-स्त्रियों ने देखा कि गाँव के सभी पुरुष अपने सरदार के पीछे-पीछे अरावली पर्वत की चोटियों पर चढ़ रहे हैं !

(२)

दोपहर का समय था। भीलों का वह ग्राम उजड़ा हुआ सा ज्ञात होता था। सभी भील देश की आन के लिए अपना बलिदान चढ़ाने गये थे। बच्चे इधर-उधर खेल रहे थे। स्त्रियाँ झोपड़ी के भीतर काम-काज में संलग्न थीं। एक झोपड़ी के बाहर एक वृक्ष की छाया में एक वृद्ध भी चारपाई पर लेटा हुआ था। उसका तीर कमान उसकी बगल में था। पुरुष के

नाम पर गाँव में केवल एक था, वह वृद्ध, पर वह शेर था। नाम था उसका शेरा। वह शेर ही की भाँति गुर्राता और शत्रुओं पर आक्रमण भी करता था।

सारे गाँव में सन्नाटा था, निस्तब्धता थी। पर इस दोपहर में लूनी नदी का वह शान्त तट काफी प्रतिध्वनित हो रहा था। भीलों की कुछ युवती लड़कियाँ घाँघरा पहिने हुए तट पर खड़ी थीं, कुछ जल में क्रीड़ा कर रही थीं और कुछ नदी से पानी ले रही थीं। बच्चे भी, पास ही वृक्ष की छाया में खिलवाड़ में व्यस्त थे। सहसा आनन्द के उस समुद्र में तूफान की लहरें उत्पन्न हो उठीं। एक युवती बालिका चीत्कार करके तट पर गिर पड़ी। सबने दौड़ कर उसे देखा उसके कलेजे में एक तीर घुसा हुआ था।

भील कन्याएँ रोष-भरी दृष्टि से इधर-उधर देखने लगीं। सामने सरिता के दूसरे तट पर दो मुगल सैनिक खड़े मुस्करा रहे थे। उन्हीं में से एक ने तीर मारा था। युवती कन्याएँ अभी उस आहत बालिका को घेर कर खड़ी ही थीं कि तीर कमान लिए शेरा आ पहुँचा। एक लड़के ने दौड़ कर उसको इसकी सूचना दी थी। उसकी आँखों से आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं। सरिता के तट पर पहुँचते ही एक वृक्ष की ओट से उसने एक तीर चला ही तो दिया। तीर एक मुगल सैनिक के कलेजे को चीरता हुआ उस पार निकल गया। मुगल सैनिक फिर न बोल सका।

उस मुगल सैनिक के आहत होते ही सैकड़ों सैनिक अरावली पर्वत की गुफाओं से निकल पड़े और जय-घोष करते हुए दौड़ पड़े भीलों के उस गाँव पर। भील स्त्रियाँ भयभीत होकर ग्राम की ओर भाग चलीं। देखते-देखते चारों ओर से मुगल सैनिकों ने गाँव को घेर लिया।

एक ओर थे सैकड़ों मुगल सैनिक और दूसरी ओर था वह वृद्ध शेरा। दो-तीन भील युवतियाँ ढोल बजाकर गाँव में युद्ध की घोषणा कर रही थीं। गाँव के स्त्री-बच्चे इस युद्ध-घोषणा को सुनकर एक स्थान पर एकत्र हो रहे थे। शेरा अपने तीरों की ओट में सबकी रक्षा कर रहा था। स्त्रियाँ और बच्चे तीरों का ढेर ला-लाकर उसके पास रखते जाते थे और वह उन्हीं को उठा-उठाकर कमान से शत्रुओं की छाती बेध रहा था। उसका साहस अपूर्व था, उसका धैर्य असीम था। वह अकेला अपने बाणों की वर्षा से सैकड़ों मुगल सैनिकों को रोके हुये था उसके एक-एक तीर सर्प की भाँति उड़ रहे थे। वह जिस गति से तीरों को मार रहा था, उसे देखकर मुगल सैनिकों को भी आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ा।

उसके श्याम शरीर से रक्त के झरने झर रहे थे। दो बार शत्रुओं के तीर उसकी भुजाओं में आकर घुसे, किन्तु उसने उनकी परवाह भी न की, वह बराबर शत्रुओं पर द्रुतगति से अपने तीर फेंकता गया। किन्तु अकेला वह कब तक मुगल सैनिकों को रोके रहता। मुगल सैनिक उस बाण-वर्षा में भी आगे गाँव की ओर बढ़ने लगे। शेरा तीर फेंकता जाता था और साथ ही पीछे भी हटता जाता था। जब उसने देखा कि मुगल सैनिकों को रोकना असम्भव है, तब वह स्त्रियों और बच्चों की ओर देखकर चिल्ला उठा, "भागो, भाग कर जंगल की ओट में छिप जाओ!"

भील स्त्रियाँ और बच्चे अपने-अपने प्राण को लेकर वन के सघन भाग की ओर भाग चले। उन्होंने भागते हुए जब पीछे फिर कर देखा, तब उनकी झोपड़ियाँ जल रही थीं और शेरा उस समय भी पवन की भाँति शत्रुओं पर तीर फेंक रहा था।

भीलों की झोपड़ियाँ धाँय-धाँय करके जल रही थीं। एक करुण क्रन्दन और एक कोलाहल। मुगल सैनिक झपट-झपट कर तलवार चला रहे थे। भीलों की स्त्रियाँ अपनी-अपनी गोद में बच्चों को छिपाये हुये वन की ओर भागी जा रही थीं। और शेरा ! वह तो अग्नि की लपटों में छिप कर शत्रुओं पर तीर चला रहा था।

शेरा ही की भाँति उस एक युवती को भी अपने प्राणों की चिन्ता न थी। वह युवती थी, हाँ, भील युवती। सब की तरह वह भी भागी जा रही थी, किन्तु छिपने के लिये नहीं, स्वाधीनता के संग्राम में गए हुए भीलों को सूचना देने के लिए। देखते ही देखते वह अरावली पर्वत के एक वृक्ष की चोटी पर चढ़ गई और लगी एक लाठी में एक वस्त्र का बड़ा टुकड़ा बाँध कर उसे आकाश में ऊँचा उड़ाने।

अरावली पर्वत ही भीलों का मोर्चा था भील मेवाड़ की मातामही की रक्षा के लिये वहीं जम कर डटे हुए थे। सहसा सरदार की दृष्टि वृक्ष पर उड़ते हुए वस्त्र पर गई। सरदार कुछ देर तक उसे देखता रहा। उसके उड़ने की क्रिया का अध्ययन करता रहा। तत्पश्चात् वह चिल्ला उठा, "दौड़ो उसकी ओर शत्रुओं ने उसे घेर लिया।"

नगाड़े बज उठे। एक बार उस अरावली पर्वत पर भयानक हलचल-सी मच गई। नगाड़े की चोट सुनकर भील दौड़े जा रहे थे अपने सरदार के पास। कुछ ही देर पश्चात् अरावली पर्वत का वह मोर्चा भीलों से खाली हो गया। सब अपना-अपना तीर कमान लेकर उस वृक्ष की ओर दौड़े जा रहे थे।

भीलों को आता हुआ देखकर युवती वृक्ष से नीचे उतर पड़ी। अब वह अपने उस झण्डे को उड़ाती हुई गाँव की ओर

भागी। भीलों ने भी उसका अनुगमन किया। दूर ही से भीलों ने देखा, झोपड़ियाँ जल रही हैं। गाँव कोलाहल से भर उठा, भील सरदार चिल्ला उठा। समस्त भील भी अपने-अपने तीर-कमान सँभालकर बाघ की भाँति शत्रुओं पर टूट पड़े। भयानक बाण-वर्षा होने लगी। मुगल सैनिकों के प्राणों पर आ पड़ी, देखते-देखते सैकड़ों भूमि पर लोट गये। जो बचे, उन्होंने भागने का प्रयास किया, किन्तु कौन जाने, वे भी सलामत भग सके या नहीं।

मुगल सैनिकों के गर्व को धूल में मिला कर भील अपने गाँव में लौटे। इनकी सारी झोपड़ियाँ जल गई थीं। चारों ओर केवल राख-ही-राख थी। उसी राख की ढेर में एक पर वृद्ध शेरा निर्जीव रूप में पड़ा हुआ था। सुनते हैं, भील स्त्रियाँ आज भी इस महावीर के यश-गीत गाती हैं।

वीर माता

(क)

वह एक प्रभात था। चारों ओर शान्ति, चारों ओर विषाद-जनित निस्तब्धता। प्रकृति रो रही थी और रो रहा था यूनानियों का हृदय भी। न पक्षी कलरव करते थे, न मनुष्य के अधर पर प्रसन्नता दीखती थी। सब वेदना और नैराश्य की चादर ओढ़े हुये थे। ईरान ने यूनान पर आक्रमण कर दिया था। यूनानी रण-देवता को प्रसन्न करने के लिये बलिदानों के ढेर लगाये जा रहे थे, पिपासु रण-चण्डी की तृप्ति के लिये रक्त से भरा हुआ प्याला-पर-प्याला देते जा रहे थे, पर ईरानी बढ़ते ही आ रहे थे। तो क्या यूनान की स्वाधीनता लुट जायगी? क्या यूनान के आँगन में ही ईरानी यूनानी स्त्रियों के मान-सम्मान से क्रीड़ा करेंगे? यही यूनानियों को विषाद था, यही उनको दुःख था। इसी को सोच-सोच कर उनके प्राण काँप रहे थे, और वे अधिक आवेग के साथ बलिदानों का ढेर लगाते जा रहे थे।

उस दिन प्रभात हो गया था। सूर्य की किरणें पृथ्वी के वक्षःस्थल पर अपनी सुनहली आभा के साथ खेलने लगी थीं। वृक्ष भी सुनहले बन गये और पर्वत भी। तालाबों और नदियों के जल पर दौड़ती हुई वे किरणें? मन आप लुटा जा रहा था। पर यूनानियों की प्रकृति का यह सौन्दर्य भी आकृष्ट करने में प्रभावहीन प्रमाणित हुआ। इसीलिये तो वे उसे और भी ध्यान न देकर डेल्फी के मन्दिर की ओर भागे जा

रहे थे। उनमें स्त्री, पुरुष, बच्चे, वृद्ध, तरुण सभी थे। सभी हैरान, आकुल और लुटे हुए थे, एक साथ ही चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे, "देवी क्या हमारी स्वाधीनता छिन जायगी ? क्या हम पराधीन हो जायँगे ? क्या हमारे बलिदानों में किसी प्रकार की त्रुटि है ?"

डेल्फी के मन्दिर के चारों ओर मनुष्य ही मनुष्य। विचित्र कोलाहल, विचित्र आकुलता। चारों ओर से यही आवाज आ रही थी, "क्या हमारी स्वाधीनता छिन जायगी ? हम पराधीन हो जायँगे ?"

पुजारिन मन्दिर से बाहर निकली। उसने आकुल जन-समूह को देखा और सुनी उनके प्राणों की पुकार। कुछ देर तक सोचकर वह बोल उठी "पुत्रो! देवी तुम पर अप्रसन्न नहीं हैं, किन्तु दुःख है कि देवी की प्रसन्नता का भाजन होकर भी तुम देश को पराधीनता की बेड़ी में जकड़े जाने से नहीं बचा सकते।"

"ऐसा क्यों माँ, ऐसा क्यों माँ ?"—जन-समूह भयभीत होकर चिल्ला उठा।

पुत्रो! पुजारिन ने कहा—"आज तुम्हारे दश का कलंक तुम्हारे देश में ही अवश्य विद्यमान है! जब तक तुम उसका सर्वनाश न करोगे, तुम्हारी स्वाधीनता सुरक्षित नहीं रह सकती!"

"वह कौन हैं माँ" भीड़ उत्तेजित होकर चिल्ला उठी।

"पुत्रो!" पुजारिन ने कहा—"और कौन होगा ? तुम देख रहे हो सारा देश श्मशान बन गया है। तुम इस श्मशान में चारों ओर उसे खोजो। वह इस श्मशान में भी निशा के अंधकार में सुरीली तान छेड़ता होगा, दिन में उसके घर से सुगन्धित वायु की लहरें उड़ती होंगी और होगी उसके नेत्रों में

मद की लाली। यही उस कलंक का परिचय है पुत्रो! उसे खोजो, उसका बध करो। वह कहीं-न-कहीं देश में अवश्य छिपा हुआ है।"

उसके सम्बन्ध में भीड़ ने और कई प्रश्न किये, किन्तु पुजारिन कुछ न बोली। उसने मन्दिर में जाकर भीतर से किवाड़ बन्द कर लिए। भीड़ उस देश-द्रोही के सम्बन्ध में मन-ही-मन विचार करती हुई लौट गई।

(ख)

"वह कौन है, जिसके घर से रात की सुरीली तान निकलती है ?"

"वह कौन है, जिसके घर से दिन में सुगंधित वायु की लहरें उड़ती हैं ?"

"वह कौन है जिसके नेत्रों में मद की लाली है ?"

यूनान में ऐसा तो एक भी व्यक्ति नहीं! चारों ओर विषाद का समुद्र लहरा रहा था। सन्ध्या होते ही दुःख की काली रात दौड़ जाती। कहीं से कोई आवाज भी कानों में न पड़ती। पड़ती तो रोने, चिल्लाने और हाय-हाय करने की। उल्लास और आनन्द जैसे यूनान छोड़कर भाग गये हों। लोग निराशा के समुद्र में डूबे हुए से थे, ज्यों-ज्यों युद्ध में शत्रुओं की विजय के समाचार आ रहे थे। लोगों के प्राण निकलते जा रहे थे। लोग अपना-अपना खाना-पीना तक भूल गये थे। गलियाँ रो रही थीं, घर सिसक रहे थे। जिस ओर देखिये, उसी ओर दुर्गन्ध, जिस ओर देखिये उसी ओर कूड़े-कर्कट का ढेर! कौन उन्हें साफ करे कौन नागरिकों के स्वास्थ्य की चिन्ता करे? सभी अपने देश की स्वाधीनता के लिए प्राणों की बाजी लगाये हुए थे। नगर, हाट, गाँव सभी उजड़े हुए थे। मदिरा की दुकानों में स्यार चक्कर लगा रहे थे। फिर मद मिलता तो कहाँ से

मिलता ? लोग खोज-खोज करके थक गये, पर एक भी ऐसा व्यक्ति न मिला जो पुजारिन के कथनानुसार देश का द्रोही हो, उसके लिए कलंक हो !!

लोग और भी अधिक व्याकुल हो उठे। देश-द्रोही का पता तो न लगा। फिर क्या देश पराधीन हो जायेगा ? फिर क्या मातृभूमि दासता की बेड़ियों से जकड़ उठेगी ?

(ग)

अर्द्धरात्रि का समय था। चारों ओर सन्नाटा, चारों ओर निस्तब्धता। सघन अंधकार निराशा और दुःख के साथ अभिनय करके भय की सृष्टि कर रहा था। नगर सूना, उजड़ा हुआ सा। स्यार डोल रहे थे, उल्लू बोल रहे थे। न कहीं प्रकाश दिखाई देता था, न कहीं प्रकाश की रेखा ! चारों ओर से साँय-साँय और काँय-काँय की प्रतिध्वनि-सी आ रही थी।

किन्तु उस वृद्ध यूनानी के हृदय में भय का लेश मात्र भी नहीं। वह विचारों के आवेग में डग बढ़ाता हुआ मन्दिर की ओर चला जा रहा था। उसका एकमात्र पुत्र युद्ध में था। वह देवी के चरणों में अपना बलिदान चढ़ाना चाहता था और लेना चाहता था, उनसे विजय का वरदान। संसार की चिन्ताओं और ममताओं से मुक्त-सा दिखाई देता था। ऐसे मनुष्य के हृदय में भय कहाँ ? भय तो उन्हें होता है जो अपने प्राणों को अज्ञानतावश अन्तर के पर्दों में छिपाये फिरते हैं।

वृद्ध बढ़ा जा रहा था देवी के मन्दिर के समीप। सहसा वह रुक गया। उसने आश्चर्य-चकित होकर सिर उठाया। सामने देवी का मन्दिर था। यह क्या ? देवी के मन्दिर के पीछे वाले भाग से मधुर संगीत की लहर ! दीपक के ही नीचे अन्धकार ! वृद्ध चमत्कृत हो उठा और दौड़ कर उसी ओर जा पहुँचा जिस ओर से मधुर संगीत की ध्वनि आ रही थी।

वृद्ध के आश्चर्य की सीमा नहीं। वह पुजारिन के ही घर का एक खण्ड था। कोई गा रहा था बड़े ही उन्माद में, बड़े ही आनन्द में, मानो रोते हुए यूनानियों की उसे चिन्ता ही नहीं। मानो सिसकती हुई यूनानी स्त्रियों के करुण क्रन्दन को कुचल कर उत्सव आनन्द मनाना वह अपने जीवन का कर्त्तव्य समझता हो। वृद्ध क्रोध से काँप उठा! उसने खिड़की से भीतर की ओर झाँककर देखा—कमरा सजा था। झाड़ों में जलती हुई मोमबत्तियाँ हँसी उगल रही थीं। फर्श पर अच्छे-अच्छे कालीन बिछे थे! एक ओर मेज पर एक व्यक्ति बैठकर मस्ती से झूम-झूमकर गुनगुना रहा था। उसके सामने ही दूसरी मेज पर शराब की बोतल थी। दो अनुचर हाथ बाँधे खड़े थे। प्यालियों पर प्यालियाँ सज रही थीं। संगीत, सुगन्धि और मद की लाली।

वृद्ध जोर से चिल्लाया, "यही है देश का द्रोही, यही है देश का कलंकी।"

मन्दिर की दिवालों और बगीचों ने भी दोहराया, "यही है देश का द्रोही, यही है देश का कलंकी।"

दीवारों से, वृक्षों से, पर्वतों से, दूहों से, प्रत्येक वस्तु से टक्कर लेती हुई प्रतिध्वनि सबके अन्तस्थल में गई। जड़, चेतन, चल, अचल सभी चिल्ला उठे, यही है देश का द्रोही, यही है देश का कलङ्क!

मन्दिर की पुजारिन ने भी बाहर निकलकर कहा, "हाँ, यही है देश का द्रोही।"

वह पुजारिन का ही पुत्र पासोनियस था। वास्तव में वह देश का कलङ्क था, वास्तव में वह देश का द्रोही था। वह गुप्त रूप से शत्रुओं से मिला हुआ था। शत्रु उसे धन देते थे और वह देश की सेना के गुप्त-से-गुप्त रहस्य को शत्रुओं के

पास पहुँचाता था। शत्रु उसी से लाभ उठा रहे थे और उसी की शक्ति से यूनान को निगलते जा रहे थे। बच्चे रो रहे थे। स्त्रियाँ सिसक रही थीं। चारों ओर करुण-क्रन्दन, चारों ओर आर्त्तनाद। पर पासोनियस को इसकी क्या चिन्ता ? कोई रोये या न रोये, कोई जीवित रहे या न रहे, पासोनियस को इससे तात्पर्य क्या है ? उसे संगीत, सुगन्धि और सुरा चाहिए। वह स्वदेश को बेंच कर इन्हीं वस्तुओं को प्राप्त कर रहा था और प्राप्त कर रहा था अधिक परिमाण में। पुजारिन को इसकी बिलकुल खबर नहीं। वह अपनी कोठरी में दिन-रात साधना में संलग्न रहती। संसार की तो बात ही क्या, उसे अपने शरीर और घर का भी बहुत कम ध्यान रहता था। वह साधिका थी, और साधना में संलग्न रहती थी।

वृद्ध की चिल्लाहट को सुनकर उसने द्वार खोलकर भाँका। सामने पासोनियस का कमरा था। खिड़की से प्रकाश की रेखा फूट रही थी। सुगन्धि के साथ संगीत की लहरें निकल कर उपवन को संगीतमय बना रही थी। पुजारिन आश्चर्य-चकित हो उठी। यह क्या ? मेरा पुत्र देश-द्रोही, देश का कलंक है ?

पुजारिन के प्राण सिहर उठे। हृदय विकम्पित हो गया। नेत्रों के सम्मुख अन्धकार की राशि सी दौड़ पड़ी। किन्तु फिर भी वह जोर से चिल्ला उठी, "हाँ, यही है देश-द्रोही, यही है देश का कलंक।"

पुजारिन ने झट अपने किवाड़ बन्द कर लिये। उसके मनोवेग, उसके हृदय की स्थिति। जरा अनुभव कीजिए !

(घ)

मन्दिर के चारों ओर मनुष्य-ही-मनुष्य थे। सबके हाथ में

मसाल थे और सब चिल्ला रहे थे, "यह देश-द्रोही है, यही देश का कलंक है।"

पासोनियस ने बाहर झाँककर देखा, क्रोधित जन-समूह का तेजस्वित स्वर समुद्र की भाँति उमड़ा आ रहा था। 'मारो, देश-द्रोही है, देश का कलंक है।" पासोनियस कमरे के प्रकाश को बुझाकर अन्धकार की गोद में छिप गया। भीड़ ने चारों ओर से उसका घर घेर लिया। उत्तेजित रव के साथ होने लगी घर पर ईंटों-पत्थरों की वर्षा। दरवाजे पर लाठियों, पदों का प्रहार देश-द्रोही है! देश का कलंक है! पासोनियस भयभीत हो उठा। सीढ़ियों से उतर कर मन्दिर की ओर दौड़ा और मन्दिर के भीतर छिप गया।

अपराधी देवी के मन्दिर में! देवी के मन्दिरों में भाग कर शरण लेने वाले अभयदान के अधिकारी होते थे। तो क्या पासोनियस भी! यह उत्तेजित भीड़ के सम्मुख विचित्र प्रश्न उपस्थित हो उठा।

किसी ने कहा, "देवी के मन्दिर में शरण लेने वाले को अभयदान मिल जाता है! यह प्राचीन प्रथा है। इसे मत तोड़ो।"

किसी ने कहा, "वह देश-द्रोही है। उसे दण्ड मिलना ही चाहिये।"

किसी ने कहा, "अवश्य, उसे बाहर खींच लाओ और जलती हुई अग्नि में झोंक दो।"

किसी ने कहा, "अवश्य! इसके लिए देवी हम पर कुपित न होंगी।"

लोग तरह-तरह की बातें करने लगे। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ। सबेरा हो गया। पासोनियस मन्दिर में छिपा रहा। अन्त में यह निश्चय हुआ कि मन्दिर की छत खोद कर

गिरा दी जाय और पासोनियस को दिन की भयानक धूप और रात की भयानक सर्दी में तड़पा-तड़पा कर मार डाला जाय। बस फिर क्या! छत खोदकर गिरा दी गई। पासोनियस कोने में सिकुड़ कर बैठा हुआ था। दिन में जब सूर्य चमका, तब मन्दिर में चारों ओर धूप-ही-धूप ?

ज्यों-ज्यों धूप तीव्र होने लगी, पासोनियस उसी से तड़पने लगा। गला सूख गया, प्राण आकुल होने लगे। 'पानी-पानी' पासोनियस मन्दिर में दौड़-दौड़कर चिल्लाने लगा, किन्तु कौन सुनता है उसकी पुकार ? भूख और प्यास की यन्त्रणा ने उसे बेदम बना दिया। वह रह-रह कर चिल्लाता और रह-रह कर अपनी अधिक आकुलता प्रकट करता था। उसकी आकुलता पर भीड़ हँसती थी, तालियाँ पीटती थी ? कई बार पासोनियस ने दीवालों पर सिर पटक कर आत्महत्या करने की भी बात सोची, किन्तु कदाचित् किसी को उसके जीवन पर दया आ जाय, इसी आशा से वह सिर न पटक सका। वह बड़ी ही दीनता के साथ भीड़ की ओर देखता। पर वह उसका उत्तर उपेक्षा और घृणा के स्वर में देती थी। कभी-कभी पासोनियस झल्ला भी उठता ? भीड़ की ओर देखकर पागलों की भाँति कहता, "क्यों मुझे इस प्रकार तड़पा रहे हो दुष्टो ? मार डालो, एक साथ ही मार डालो ? आग में झोंक दो, गोली से उड़ा दो, पर इस प्रकार न तड़पाओ, यन्त्रणा की आग में न जलाओ ?"

भीड़ अट्टहास करके रह जाती।

दिन के पश्चात् रात। जो आकाश तप रहा था, वही हिम की वर्षा करने लगा। पासोनियस ने संध्या को देखकर सोचा होगा, 'अब रात में कष्ट कम हो जायँगे।' किन्तु रात में भयानक नक शीत। ज्यों-ज्यों रजनी आगे पैर बढ़ाने लगी, त्यों-त्यों शीत

का प्रकोप भी बढ़ता गया। तब पासोनियस को ज्ञात हुआ रजनी का महाकष्ट। उसका सारा शरीर शीत से अकड़ गया। वह अपने कुर्ते को खींच कर अंगों को ढँकने की कोशिश करता पर कुर्त्ता फट गया। अंग खुले-के-खुले ही रह गये। पासोनियस उठा और गर्मी के लिए मन्दिर में इधर-उधर दौड़ने लगा। किन्तु दौड़ भी न सका, रात को हिम वर्षा ने पैरों की शक्ति खो दी, उसके सारे अंग शक्तिहीन से हो गये। वह भूमि पर गिर पड़ा।

रात भर उसकी खुली छाती पर आकाश से हिम-वर्षा होती रही, चारों ओर शान्ति थी, निस्तब्धता थी, पर कभी-कभी उल्लू और स्यार बोल उठते थे, मानो मनुष्य की अनुपस्थिति में वे ही पासोनियस की दुरवस्था पर हृदय का आनन्द प्रकट कर रहे हों।

(ङ)

प्रातःकाल हुआ। सूर्य की किरणें चमक उठीं। लोग दौड़ पड़े दल-के-दल मन्दिर की ओर। लोगों ने मन्दिर के किवाड़ खोलकर देखा, पासोनियस भूमि पर पड़ा है। शरीर अकड़ गया है। न हिलता है, न डोलता है। विचित्र दशा थी उसकी? कौन जाने उसकी दशा पर मन्दिर की दीवारों को भी दया आ गई हो।

किन्तु यूनानियों को दया न आई। वे एक साथ ही चिल्ला उठे, "देश-द्रोही था, देश कलंकी था।"

दूसरी ओर से भीड़ में से एक व्यक्ति ने कहा, "किन्तु अभी जीवित है।"

दूसरे ने कहा, "नारकीय है न? उसे और भी अधिक यंत्रणा झेलनी है!!"

तीसरे ने कहा, "पा चुका अपने किए का दण्ड। जाने दो अब उसे।"

चौथे ने कहा, "नहीं, वह देश-द्रोही है। उसे इसी प्रकार तड़प-तड़प कर मरने दो।"

सहसा भीड़ चिल्ला उठी, "अभी जीवित है, अभी जीवित है!" लोगों ने आश्चर्य-चकित होकर देखा, पासोनियस उठ कर बैठा था। वह भीड़ की ओर देख रहा था! कुछ देर के पश्चात् बोल उठा, "हाँ मुझे मार डालो, निश्चय ही मुझे मार डालो। मैं देश-द्रोही हूँ। देश का कलंक हूँ। मैंने देश के साथ विश्वासघात किया है, मातामही को धोखा दिया है। मुझसे बढ़कर पापी जगत में और कौन होगा? मुझ जैसे पापी को शीघ्र आग में डालकर भून देना चाहिए। किन्तु तुम सब मेरी बातों को मानो, मुझे कुछ देर के लिए मुक्त कर दो। मैं तुम्हें ईरानी सेना के ऐसे-ऐसे गुप्त रहस्य बताऊँगा कि तुम सहज ही में ईरानियों का सर्वनाश कर सकोगे। पर नहीं, तुम सब मेरी बातों पर विश्वास न करो। मैं विश्वास के योग्य नहीं। मुझे स्वयं भी अपने पर विश्वास नहीं है। जो हो, किन्तु मैं यूंनान का कल्याण चाहता हूँ। तुम चाहो तो मुझसे लाभ उठा सकते हो। आज रात में जब मैंने पवित्रता से पश्चात्ताप प्रकट किया, तब देवी मुझ पर प्रसन्न हुई। देवी ने मुझे ऐसे-ऐसे मन्त्र बताए हैं कि मैं उन मन्त्रों की शक्ति से सहज ही में ईरानियों का संहार कर सकता हूँ। किन्तु नहीं, तुम मुझ पर विश्वास न करो। मैं देश-द्रोही हूँ, देश का कलंक हूँ। कौन जाने, मैं फिर शत्रुओं की सहायता करने लगूँ। कौन जाने मैं फिर विलास के लिए मातामही को धोखा देने लगूँ।

भीड़ ने पासोनियस की बातें बड़े ध्यान से सुनीं। सब

आपस में तरह-तरह की बातें करने लगे। किसी ने कहा, "पासोनियस पश्चात्ताप कर रहा है। उसे मुक्त कर दो!"

किसी ने कहा, "यह अपने पिछले कामों को सोचकर बहुत दुखी है।"

किसी ने कहा, "हाँ, उसकी बातों से सचाई प्रकट हो रही है।"

किसी ने कहा, "अवश्य, इसीलिए तो वह कहता है कि मेरी बातों पर विश्वास न करो। उसे अवश्य ही अब मुक्त कर देना चाहिए।"

पासोनियस सिर झुकाकर बैठा हुआ था। किन्तु उसके कान लगे थे भीड़ की ओर। वह भीड़ की एक-एक बात को सुन रहा था। कुछ देर के पश्चात् बोल उठा, "नहीं, मुझे मुक्त न करो। मैं इस योग्य नहीं कि मुक्त किया जाऊँ। मैंने देश के साथ विद्रोह किया है, उसे धोखा दिया है। तुम सब मुझे इसी प्रकार तड़पने दो, तड़प-तड़प कर मरने दो।"

भीड़ में से एक यूनानी बोल उठा, "पासोनियस सच्चा है!"

दूसरा—"भूला हुआ था, ठीक रास्ते पर आ गया। सच्चाई के साथ पश्चात्ताप प्रकट कर रहा है।"

तीसरा—"इसे मुक्त कर देना चाहिए।"

चौथा—"बिल्कुल ठीक। इससे ईरानियों की सेना का गुप्त रहस्य ज्ञात होगा।"

पाँचवाँ—"वास्तव में हम लोगों ने पासोनियस को उचित से अधिक दण्ड दिया।"

पासोनियस सभी बातें ध्यान से सुन रहा था। पुनः वह बोल उठा—"मैं ईरानी सेना के ऐसे गुप्त रहस्य जानता हूँ कि यदि तुम उन्हें जान जाओ तो सहज ही में ईरानियों का

संहार कर सकते हो, उन्हें पराजय के समुद्र में ढकेल सकते हो।"

भीड़ में पुनः एक हलचल सी मच गई। लोग एक साथ ही कह उठे, "अवश्य, पासोनियस को मुक्त कर दो। वह सज्जन है, सत्यवादी है।"

कुछ लोग मन्दिर के द्वार की ओर बढ़े। सहसा किसी ने चिल्लाकर कहा, "सावधान!"

लोगों ने आश्चर्य-चकित होकर देखा, वह मन्दिर की पुजारिन थी। मन्दिर की सीढ़ी पर खड़ी होकर कह रही थी, "सावधान! मेरे पुत्रो, सावधान! तुम्हें क्या हो गया है? जिस पासोनियस ने यूनान को श्मशान बना दिया, जिसके कुकृत्यों के फलस्वरूप यूनान की मही-माता सिसकियाँ भर रही है, उसी की चिकनी-चुपड़ी बातों में तुम इतने शीघ्र आ गये! स्मरण रहे यदि तुम पासोनियस को मुक्त कर दोगे, तो यूनान बिक जायगा, सदा के लिए बिक जायगा, न इसकी स्वाधीनता रहेगी, न रहेगी इसकी मान-मर्यादा। वह शत्रुओं से मिलकर देश का सर्वनाश करेगा, मही-माता को पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ेगा। तुम रोओगे, आँसू बहाओगे, और पश्चात्ताप करोगे, किन्तु सब व्यर्थ होगा। चेतो, सावधान हो जाओ और इसे मुक्त न करो, बोलो, क्या तुम देश की स्वाधीनता चाहते हो? क्या तुम्हें अपनी माँ-बहनों की मान-मर्यादा प्राणों से भी अधिक प्यारी है? क्या तुम चाहते हो कि माता-मही की विजय-पताका आकाश में उड़ती रहे?"

"हाँ, हम चाहते हैं माँ! हम चाहते हैं।" भीड़ चिल्ला उठी!

पुजारिन पुनः आवेग के साथ बोल उठी, "तुम चाहते हो मेरे पुत्रो ! तो इस देश-द्रोही को मन्दिर के द्वार में चुन दो, इस कार्य की संपूर्ति के लिए सबसे पहला पत्थर मैं अपने हाथों से लगाती हूँ।"

पुजारिन थी पासोनियस की माँ। लोगों ने देखा उसने एक पत्थर उठाकर द्वार में लगा दिया। फिर तो देखते-देखते पत्थर के ढेर लग गये। देश-द्रोही द्वार में चुन दिया गया। धन्य थी वह वीर माता ! ऐसी माताएँ जिस देश में हों, वह क्या कभी पराधीन हो सकता है ?

अपूर्व त्याग

"टेरेसा, जँगले के पास बैठ कर एकटक क्या देख रही हो ? क्या है ? मुझे बताओ। सुबह से बिस्तर पर पड़ी हूँ, अच्छा नहीं लग रहा है।"

"कोई खास चीज नहीं देख रही हूँ माँ, माउंट फेकली पहाड़ डूबते हुए सूर्य की किरणों से झलमल हो रहा है, उसे ही बैठे-बैठे देख रही हूँ।"

"रास्ते में कोई चल तो नहीं रहा है ?"

"कोई नहीं।"

"जो हो, आज सेना का कोई यहाँ नहीं आया, इससे खुश ही हूँ। हमारे देश के लोगों का अनिष्ट करने में ही वे लोग व्यस्त रहते हैं, इससे मेरे दिल को बहुत चोट पहुँचती है।"

युवती बोली—"माँ, सेना के सभी लोग बुरे नहीं होते। बुरे होते हैं वे लोग जो उन्हें लोगों का अनिष्ट करने का आदेश देते हैं! सिपाही तो केवल उनका हुक्म बजा लाते हैं। हमारे देश के सैनिक भी राजकर्मचारियों के आदेशानुसार काम करते हैं। युद्ध भी भयानक वस्तु है। न जाने भगवान लोगों को मारकाट करने क्यों देते हैं ?"

"तुम्हारे से जिसके दिमाग बड़े हैं, वे बहुत दिनों से अनेक बार इन सब बातों पर विचार कर चुके हैं, किन्तु किसी निर्णय पर नहीं पहुँचे। यह आवाज कैसी है ? जरा जँगले के पास जाकर देखो तो !"

"हाँ, बहुत से सैनिक आ रहे हैं। रास्ते के मोड़ पर उन्हें

देख रही हूँ। शराब पीने के लिए वे लोग अवश्य दुकान पर आएँगे। मैं नीचे जाती हूँ।"

"तुम्हारा उन लोगों के पास जाना मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता। वे हमारे देश के शत्रु हैं। नहीं टेरेसा, तुम न जाओ। उन लोगों की जितनी खुशी हो, खुद शराब पीकर चले जायँ।"

युवती ने दीवाल पर लटकती हुई सेल्फ से एक बोतल निकाल कर एक बर्तन से कुछ दवा डाली इसके बाद माता के सामने उसे रखकर बोली—"पाद्रे भेरिता ने तुम्हारे लिए यह औषधि भेजी है। इससे तुम्हारा बुखार कम हो जायगा। माँ, यह तो तुम जानती ही हो कि हम लोग रुपये-पैसे के लिये कितने मुहताज हो रहे हैं। अगर मैं नीचे जाऊँगी तो सिपाही मुझे दाम देंगे। अगर न जाऊँगी तो वे लोग बिना मूल्य दिये ही खूब पिएँगे और साथ में कुछ-कुछ लेते भी जायँगे! यह नुकसान क्या हम लोग सह सकेंगे?"

"ठीक कहती हो बेटी, हम लोगों को रुपये की सखत जरूरत है किन्तु बेटी, ज्यादा देर तक नीचे न रहना।"

युवती जिस समय आई उस समय कमरा सैनिकों से भर गया था।

सैनिकों में बहुतों ने उससे परिचित आत्मीय की तरह बातचीत की। वे इधर कई दिनों से जलपान और विश्राम करने के लिए आते हैं।

जिसको जिस चीज की जरूरत थी, युवती ने उसे वही देकर संतुष्ट किया। उनके प्रश्न के उत्तर में सुन्दरी ने कहा कि मेरी माता बीमार है और ऊपर बिस्तरे पर पड़ी है। यह सुनकर सैनिक मृदु स्वर में बात करने लगे, उनमें से सभी ने उसकी विपत्ति में सहानुभूति प्रकट की। इसके बाद शराब के वाजिब दाम चुकाए।

इस सेनादल का सार्जेंट घर के एक कोने में बैठा हुआ था। उस युवक का डीलडौल लम्बा, सिर के बाल सुन्दर थे। नेत्रों से बालोचित सरलता टपकती थी। युवती ज्योंही उसके पास गई, त्योंही उसने मूल्य देने के अभिप्राय से उसका हाथ स्पर्श किया। इसके बाद कोमल स्वर में कहा—"ये लोग अभी घोड़े पर सवार होंगे। क्या उस कुंज के नीचे मुझसे भेंट करोगी? मैं तुमसे एकान्त में कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

टेरेसा ने सिर हिलाकर अनुकूल मत प्रकट किया और चुपचाप दूसरी ओर को चली गई। इसके बाद जब सैनिक घोड़े पर सवार होने लगे, इतने ही में मौका पा, दूसरों की निगाह बचा कर, खिड़की के रास्ते से वह बाहर आई। आँगन पार कर धीरे-धीरे, वह पास के कुंज के नीचे जाकर खड़ी हो गई।

थोड़ी देर में वह सिपाही उससे आ मिला।

"प्राणाधिक टेरेसा, आज तुम्हें देखे तीसरा दिन है, किन्तु इतने थोड़े समय के परिचय में ही तुम्हें कितना प्यार करने लगा हूँ!"

युवक ने उसके कोमल हाथों को दृढ़ता से पकड़ कर कहा— "मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ, तुम मुझे भी प्यार करती हो?"

"फ्रांज तुम तो यह जानते हो।"

"जानता तो हूँ, किन्तु तुम्हारे मुख से उच्चारित होने से संगीत-ध्वनि की तरह मेरे कर्णकुहर में जान पड़ेगी। वे अभी घोड़े पर सवार हो चल पड़ेंगे इसलिए और विलम्ब करने से न चलेगा। मैं जो कहने के लिए आया हूँ उसे पहले तुमसे कह डालूँ। टेरेसा, विद्रोहियों की तलाश में यह दिन-रात की दौड़-धूप शीघ्र ही बन्द हो जायेगी। बन्द होते ही मेरा छुटकारा हो जायगा। यह सब मनुष्य का काम नहीं है। उस समय क्या तुम मुझसे शादी करोगी?"

युवती अपने प्रणयी के पास से हटकर गम्भीर स्वर में बोली—"हाँ फ्रांज, मैं तुमसे विवाह करूँगी लेकिन तुम यह शपथपूर्वक कहो कि तुम और कभी इस जन्म में, सेनादल में प्रवेश न करोगे। मेरे स्वामी की तलवार मेरे देशवासियों की है—आत्मीय स्वजन के विरुद्ध वह सदा खुली रहे, यह मुझसे कभी सहन नहीं हो सकता !"

"तुम्हारे लिये मैं यह स्वीकार करता हूँ, किन्तु कहीं अन्त में ऐसा न हो कि तुम्हारे इटली के प्रति मेरे मन में ईर्ष्या पैदा हो !"

"ऐसी बात न होगी। जिस दिन तुम्हारे साथ मेरी शादी होगी, उस दिन से ही मेरे आत्मीय और माता मुझे अभिशाप देंगे। 'बाल्डिनी' दल का प्रत्येक व्यक्ति देश-प्रेमी है। केवल मुँह से ही नहीं, बल्कि मनसा-वाचा-कर्मणा हम लोग जन्मभूमि के भक्त हैं। तुमसे विवाह करने पर मुझे अपने देश, गृह-स्वजन सभी का परित्याग कर देना पड़ेगा। मैं सानन्द इसके लिए भी तैयार हूँ, क्योंकि प्रेम ही स्त्री का धर्म है। स्वामी के लिये स्त्री सदा त्याग करती है। सिर्फ मैं इसी बात का ख्याल रखूँगी कि प्रेम के कारण मेरी जन्मभूमि इटली का कोई अनिष्ट न हो। फ्रांज, तुम्हारे प्रेम के खातिर भी मैं वैसा न कर सकूँगी।"

"प्रिये ! जब इतना महान त्याग स्वीकार करोगी, तब मेरा प्रेम निश्चय ही उस क्षति की पूर्ति कर सकेगा, किन्तु समय और विलम्ब नहीं कर सकता। संकेत-ध्वनि सुनो। मैं चला। अगर निकट रहा तो संभवतः आज रात को फिर वापिस आऊँ। तुम कोई शंका न करना, चाहे जितनी देर हो, ठीक समय पर पहुँच जाऊँगा।"

वह सैनिक चला गया। युवती घर को वापस आयी। ऊपर

कोठे पर उसकी रुग्णा माता उस समय सुख की नींद सो रही थी। चिकित्सक की दवा ने अपना प्रभाव दिखाया। माँ को सोई हुई देखकर युवती दबे पाँव नीचे उतर आयी। सदर दरवाजे की अर्गला बन्द कर उसने एक दीपक जलाया। इसके बाद बुझे हुए अग्निकुण्ड के बगल में बैठकर भविष्य की चिन्ता में निमग्न हो गई। आशा, आशंका, आनन्द और निरानन्द एक साथ उसके हृदय में पैदा हो रहे थे। उच्च चरित्रवाले प्रेमी के अकृत्रिम प्रेम के लिए वह सब तरह की यंत्रणा सहने के लिए तैयार थी!

वह इतनी तन्मय होकर सोच-विचार रही थी कि कब दंड-पर दंड बीत गये, इसका उसे पता न चला। अकस्मात् रात की निस्तब्धता को भंग करते हुए राज मार्ग पर घोड़ा गाड़ी का शब्द जान पड़ा। वह चकित होकर उठ खड़ी हुई। उसका हृदय शीघ्रता से स्पन्दित हो रहा था। इतनी रात को कौन गाड़ी पर चढ़कर आया है! शब्द क्रमशः पास आया। उसने सोचा, जरूर कोई भगेड़ू आया है, किन्तु गाड़ी पर चढ़कर वह कैसे आ सकता है? गाड़ी रुकी। दरवाजे पर किसी ने धीरे से थपथपाया। युवती घर से बाहर आयी। सीढ़ी के पास खड़ी होकर क्षण भर उसने कान लगाकर सुना। कोठे पर कोई आवाज न सुनाई पड़ी। अर्गले पर हाथ रखकर वह मृदु स्वर में बोली—"कौन है?"

वैसे ही स्वर में आवाज आयी—"मित्र—"

काँपते हुए हाथ से उसने भारी लोहे का अर्गला को खोल दिया।

बाहर दो आदमी खड़े थे। एक किसान, दूसरे लम्बे डीलडौल वाला पुरुष। उसका मुखमण्डल सिर की टोपी से ढँका था। शरीर पर लम्बा अँगरखा था। सड़क पर

एक गाड़ी खड़ी थी, उसके ऊपर और एक आदमी बैठा था।

संभवतः वह बीमार था!

किसान बोला—"आप क्या अकेली हैं?"

"हाँ, सिर्फ रोगी माँ ऊपर कमरे में सोई हैं।"

अँगरखेवाला आदमी बोला—"सिनोरिया, हम लोगों को एक-एक प्याला गर्म कहवा दे सकती हो? हम लोग एक-आध घण्टा आराम करना चाहते हैं। मेरा भाई बीमार है। उसने युवती के मुँह पर निगाह डालकर देखा कि प्रार्थना व्यर्थ नहीं गयी। क्षण भर की देरी न कर पीड़ित मित्र के सन्धान के लिए गाड़ी की तरफ चला।

गाड़ी चली गयी। युवती ने नवागंतुकों को घर में बुलाकर द्वार बन्द कर लिया! उसके बाद बिना कुछ कहे हुए आग जला कह कहवा तैयार करने लगी।

साथी की पीड़ा के सम्बन्ध में दो-एक बातें पूछकर लम्बे डील-डौल वाले पुरुष ने सिर से टोपी उतार डाली। उसके बाल चारों तरफ छिटक पड़े, आगन्तुक ने मेज पर एक हाथ रखकर उस पर अपना मस्तक रक्खा और तुरन्त ही गहरी नींद में सो गया। उस समय उत्कंठा अथवा आशंका का कोई चिह्न उसके मुँह पर न दिखाई पड़ा। उससे कम अवस्था वाला उसके शांत मुखमण्डल की ओर ध्यानपूर्वक देखने लगा। उसके सुन्दर चेहरे से यन्त्रणा और भूख-प्यास की मुर्दनी प्रकट हो रही थी। लेकिन उसकी आँखों में नींद बिलकुल न थी।

युवती ने कहवा तैयार कर मेज पर रक्खा। इसके बाद बन्द जंगले के पास खड़ी हो, कान लगाकर सुनने लगी। उसे ऐसा जान पड़ा कि बहुत दूर सड़क पर घोड़े की टाप सुनाई पड़ रही है। वह मेज के पास आकर बोली—"आस्ट्रियन आप लोगों को खोज रहे हैं। वे इधर ही आ रहे हैं।"

जगे हुए व्यक्ति ने अपने साथी के कन्धे पर हाथ रक्खा। वह एक छलाँग में उठ खड़ा हुआ।

"गोसिपी, वे हम लोगों की तलाश में आ रहे हैं।"

"मैं जानता था ऐसा ही होगा, किन्तु इतनी जल्दी यह सब हो जायगा, इसकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी।"

मैदान तक गयी हुई सड़क पर घोड़े की टाप अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ने लगी। उसके गले की आवाज भी अधिक स्पष्ट थी।

युवती फुर्ती से रसोई घर की ओर चली। कपड़े वगैरह रखने के लिए एक बड़े ताक के ऊपर एक परदा लटका हुआ था। फुर्ती के साथ उस परदे को उतार कर वह बोली—"आप लोगों में से एक आदमी यहाँ आवे!" अवस्था में जो बड़ा था उससे उसने कहा—"आप ही जल्दी आइये।"

उसने दृढ़ स्वर में कहा—"नहीं, हम लोग दोनों साथ ही रहेंगे।"

"आप लोगों में से यदि एक ही को वे देख पायेंगे, तो मेरा अनुमान है कि मैं आप दोनों की जान बचा सकूँगी। किन्तु वह मेरे पास ही रहें।"

"ईश्वर की दुहाई, इटली की दुहाई। सेनापति आप जायँ। यही हम लोगों की रक्षा का एक मात्र उपाय है। मेरा विश्वास है कि जो यह कह रही हैं, वही करना ठीक होगा।"

टेरेसा ने परदा गिरा दिया! इसके बाद एक पुराने बक्स से मजदूरों के पहनने लायक एक नीला कुर्त्ता निकाल कर युवक से कहा—"आप लाल कोट पर इसे पहन लीजिये, उसे कोई देख न सके।" इसके बाद कोमल स्वर से कहा—"सिनेरा, आप हिले-डुलें नहीं। वे यह समझने न पावें कि आप लँगड़े हैं।"

दरवाजे पर बार-बार खड़खड़ाहट सुनकर उसने द्वार खोल दिया।

"सुन्दरी टेरेसा, तुम्हारी नींद तोड़कर तुम्हें कष्ट तो नहीं दिया।"

"नहीं सेनापति महोदय, मैं जगी हुई थी, सोई नहीं थी।"

"मैं अभी मेडिग्लयाना की ओर जाऊँगा। इसके पहले एक गिलास शराब तो पी ली जाय। विद्रोहियों के पीछे व्यर्थ में भटकते-भटकते बहुत प्यास लगी है।"

युवती रास्ता छोड़कर खड़ी हो गयी। सैनिकों ने एक-एक करके रसोईघर में प्रवेश किया। फ्रांज ने सबसे अन्त में प्रवेश किया। उसने चलते-चलते उसका हाथ स्पर्श किया। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो सर्वत्र धुन्ध छाया है।

"टेरेसा, यह आदमी कौन है? इतनी रात को यह अतिथि कहाँ से आया?"

"ये पास ही के गाँव से आये हैं। आप लोगों की तरह यह भी एक गिलास शराब पियेंगे।"

"खैर, जरा देखा तो जाय। अजी, बातचीत न करो। क्यों जी, जवाब क्यों नहीं देते? सिपाही, इसे गिरफ्तार कर इसके कपड़ों की तलाशी लो। शत्रु की सेना का यदि कोई होगा, तो अभी इसे समझूँगा। यदि ऐसा होगा, तो साथ लेता जाऊँगा।"

टेरेसा ने देखा, परदा कुछ हिल उठा। वह सामने की ओर बढ़ी। वह यह जानती थी कि वह जो बात कहने जा रही है, उसे कहने की अपेक्षा प्राण देना सहज है। किन्तु उसका कंठ-स्वर बिलकुल विचलित न हुआ। उसने कहा—"सेनापति महोदय, मेरे ही कारण वे चुप हैं। किन्तु उनकी होकर मैं सब कहती हूँ। वे मेरे प्रणयी हैं इसी से वे यहाँ आये हैं। आज

मैंने बाध्य होकर यह बात कही। महाशय, मैं हाथ जोड़कर निवेदन करती हूँ, इन्हें मेरे पास से अन्यत्र न ले जाँय।"

इटली का युवक बोल उठा–"यह क्या कहती हो?" किन्तु सैनिकों की उच्च हास्य-ध्वनि में यह बात विलीन हो गयी।

युवती अस्फुट स्वर में बोली—"चुप रहिये। इटली के लिए यह सब कर रही हूँ।"

"आधी रात हो गयी, रोगी माता ऊपर सोई पड़ी है। स्त्री-चरित्र विचित्र है! क्यों फ्रांज, मैंने समझा था, तुम्हीं इस स्त्री के प्रेमी हो। यदि यह बात सच है, तो तुम्हारी रुचि की प्रशंसा करनी चाहिए।"

क्षण भर के लिए टेरेसा ने फ्रांज की ओर देखा। उसका चेहरा पाला पड़ गया था। उस समय उसके चेहरे पर बालोचित सरलता की एक रेखा भी दिखाई न पड़ी। युवती मन-ही-मन मना रही थी—"हे भगवान्। वह हमारी इस बात पर विश्वास न करे।" किन्तु वह जानती थी कि इस समय अविश्वास किये बिना सब चौपट हो जायगा।

"सेनर, फ्रांज को लेकर मैं जब-तब दिल्लगी कर बैठता हूँ, वह तो स्वाभाविक है। ऐसी सुनसान जगह में अकेला रहना बड़ा कठिन है। किन्तु जी बहलाना छोड़कर हमारा दूसरा कोई इरादा नहीं रहता। मैं अपनी प्रेमिका गोवानी पर सदा अनुरक्त हूँ। फ्रांज़ ने क्या सच ही समझ लिया था कि कोई इटालियन युवती शत्रु पक्ष के युवक को कभी आत्मसमर्पण कर सकेगी? बल्कि इसके पहले तो वह मृत्यु को वरण करेगी।"

तब फ्रांज बोला—'सेनापति, आपने ठीक ही कहा था। मैं सचमुच इस स्त्री को अन्तःकरण से चाहने लगा था। इससे ब्याह करने को भी था। यदि मैं सेना से अलग हो जाऊँ और इसके देशवासियों के विरुद्ध अस्त्र न धारण करूँ, तो यह मुझसे

शादी करेगी, आज ही ऐसी प्रतिज्ञा हुई थी। मैंने भी स्वीकार किया था कि अपने सैनिक धर्म, अपनी भावी उन्नति की आशा सभी कुछ त्याग कर इसके मन के मुताबिक काम करूँगा। इसका उपयुक्त दण्ड पा लिया। स्त्री के प्रेम, पतिव्रत और पवित्रता में मैं विश्वास करता था, इस समय मुझे इसी पर आश्चर्य हो रहा है।" कुछ देर के लिए दोनों हाथों से उसने अपना मुँह ढक लिया। इसके बाद अकस्मात् उठकर खड़ा हो गया और बोला—"सेनापति चलिए, शीघ्र ही यह स्थान छोड़ दीजिए।"

इटालियन युवक ने एक बार कुछ कहना शुरू किया लेकिन उसके बगल में बैठी हुई युवती ने उसकी जख्मी जाँघ को दबा दिया। युवक पीड़ा से छटपटा कर रह गया। युवती ने कोमल स्वर में कहा—"यह सब अभिनय इटली के लिए है, इसके लिए है।"

फ्रांज की बात सुनकर सैनिक कुछ देर तक चुप रहा। सेनापति ने सहकारी के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—'हाँ चलो, यह स्थान अभी त्याग दिया जाय। इसकी शराब हम लोग छुयेंगे भी नहीं। तो भी युवक, सुन रक्खो। आस्ट्रिया में तुम्हारे योग्य पवित्र हृदय वाली सुन्दरी का अभाव नहीं। दक्षिण देश की युवतियाँ···।"

उसने अस्फुट स्वर में न जाने क्या कहा ? इसके बाद ओवर-कोट लेकर चल पड़ा। सैनिक भी उसके पीछे-पीछे चले। फ्रांज पहले की तरह सबके अन्त में कमरे से बाहर हुआ।

टेरेसा ने कातर नेत्रों से उसकी ओर देखने की चेष्टा की। यदि एक बार फ्रांज उसके नेत्रों की ओर देखता, तो देखते ही उसे पता चल जाता कि युवती ने जो कुछ कहा है, वह सब सफेद झूठ है। लेकिन वह स्त्री एक इटालियन युवक के कन्धे पर हाथ रक्खे आँखें नीची किये ताकती रही।

टेरेसा ने देखा कि लम्बे कद वाला सैनिक उसके बगल से होकर जाते समय कोई सफेद चीज जमीन पर फेंकता गया है। उसी दिन तीसरे पहर को टेरेसा ने उसे जो गुलाब का फूल दिया था, यह वही फूल है। वही युवक जाते समय उस फूल को पैर से कुचलता गया।

"सिनोरिना, आपने क्या किया ? प्रेम, मर्यादा सभी को विसर्जित कर दिया ! आपने क्यों नहीं मुझे बात करने दी ?"

टेरेसा ने युवक के मुँह पर पीड़ा, लज्जा और शोक का चिह्न देखा। उसने बहुत-सी बातें झूठ कही थीं, और यदि दो-एक झूठी बातें कहकर किसी भले आदमी की मानसिक अशांति दूर कर दी जाय तो इससे हानि क्या ?

"महाशय, भय का कोई कारण नहीं। मैं इच्छा करने पर अपने प्रेमी के भ्रम को दूर कर सकूँगी।"

परदा हटा दिया गया। युवती ने देखा कि दो उज्ज्वल नीली आँखें उनके मुँह पर गड़ी हैं। उन नेत्रों में बालक की सी सरलता है ! युवती ने भक्ति में भर कर अपना हाथ उस अपरिचित होठ की ओर बढ़ाया।

"सिनोरिना, जान पड़ता है, आपने मुझे पहचान लिया। जिसके लिए आपने इतना त्याग स्वीकार किया है, निश्चय ही उसे पहचाना है।"

"आप गैरीबाल्डी हैं।"

"केवल मेरे लिए आप इतना नहीं कर सकती थीं। इटली के पवित्र नाम पर मैंने आपका यह आत्मोसर्ग सिर पर लिया।"

जिसके लिये इतनी चेष्टा की गई, वह सफल हुआ। अब और अभिनय करना असम्भव है। वह अब एकान्त में बैठकर

सोचना चाहती है। निराशापूर्ण जीवन वह किस प्रकार बितायेगी, एक बार एकान्त में बैठकर यही सोचना है!

"राजमार्ग के दूसरी ओर एक गोल मकान है। यहाँ आज रात को आप लोग सो सकते हैं। वे लोग आज रात को लौट कर नहीं आयेंगे। सबेरे एक आदमी आपके साथ कर दूँगी, वह बिलकुल आराम के साथ पहाड़ के रास्ते से ले जायगा।"

"सो मुझे विश्वास है। ईश्वर की कृपा से इटली की स्त्रियाँ इस भाव से प्रेरित हो आत्मोसर्ग करें तो शीघ्र ही इसके अच्छे दिन लौट आयेंगे।"

दूसरे दिन सेना लौट आयी। वे प्रतारित हुये थे, इसलिए टेरेसा को बहुत तरह से लांछित किया गया, कष्ट दिया गया। युवती ने उन सब कष्टों पर जरा भी ध्यान नहीं दिया। एक व्यक्ति सेनादल के साथ नहीं आया। युवती जानती थी कि वह कभी नहीं आयेगा। भागनेवाले उस समय पर्वत-समूह को पार कर समुद्र के पास पहुँच रहे थे। समुद्र-तीर पर पहुँचते ही उनकी रक्षा हो जायगी। उनकी रक्षा होने पर इटली के भविष्य की आशा है।

× × ×

दस वर्ष के बाद एक दिन फ्लोरेंस से वोलना तक सारा मार्ग दर्शकों से भर गया। प्रत्येक नगर, प्रत्येक गाँव से दर्शकों का दल इटली के उद्धारकर्त्ता को देखने के लिए इकट्ठा हुआ था।

सड़क के बगल में स्थित एक सराय के सामने एक गाड़ी खड़ी हुई। एक स्त्री उस गाड़ी के सम्मुख उपस्थित हुई। उसके मुँह पर विषाद की छाया थी। किन्तु उसकी सौन्दर्य-राशि अब भी एकबारगी लुप्त नहीं हुई थी। गाड़ी पर बैठे हुए व्यक्ति ने आग्रह के साथ रमणी से हाथ मिलाया। एक दिन जन्मभूमि की रक्षा करने वाले को इसी ने जीवनदान दिया था।

उसकी कीर्ति-कहानी पहले ही लोगों में फैल गयी। दर्शक आपस में कह सुन रहे थे कि देखो, इस स्त्री का कैसा सम्मान हो रहा है! इतने दिन बाद इसे उचित पुरस्कार मिला।

उन्होंने उस स्त्री से हाथ मिलाया। उन्हें छोड़कर और कोई नहीं जानता था कि उसने कैसा त्याग स्वीकार किया था। उसके उपयुक्त पुरस्कार पृथ्वी में कोई नहीं दे सकता। जीवन की नाट्य-शाला में पुरुष आशा करते हैं, काम करते हैं, किन्तु स्त्रियाँ सदा यन्त्रणा सहन करती हैं।

———

इन्कलाब जिन्दाबाद

(१)

एक दिन एक बालक अपने पिता जी के साथ खेतों की ओर गया। अभी वह बहुत छोटा था। उसने देखा कि किसान हल चला रहे हैं। पिताजी से पूछा—"ये क्या कर रहे हैं ?" पिता ने कहा—"हल से खेत जोत रहे हैं। बाद में अनाज बोया जायगा।"

इस पर बालक ने कहा—"अनाज तो बहुत लोग पैदा करते हैं। ये लोग तलवार बन्दूक की खेती क्यों नहीं करते, जिससे सब जगह बन्दूकें ही बन्दूकें पैदा होने लगें।"

यह सुनकर उसके पिता जी बड़े जोर से खिलखिला कर हँसने लगे।

कुछ दिनों बाद उनके यहाँ कोई अतिथि आये। बातचीत के क्रम में उन्होंने बालक से पूछा—"तुम क्या करते हो ?"

बालक ने कहा—"मैं खेती करता हूँ।"

अतिथि ने पूछा—"तुम बेचते क्या हो ?"

बालक ने कहा—"मैं बन्दूकें बेंचता हूँ ?"

ये वाक्य थे सरदार भगत सिंह के, जिन्होंने मातृभूमि की चिर सेवा का व्रत लेकर अपने प्राण हँसते-हँसते दे दिये।

सन् १९२८ की बात है। भारत के भाग्य का निर्णय करने के लिए लन्दन से साइमन कमीशन भारत पधारा। यहाँ की प्रत्येक संस्था ही ने नहीं यहाँ के करोड़ों नर-नारियों ने एक स्वर से इसका बायकाट किया, और विरोध-प्रदर्शन किया। जहाँ-

जहाँ साइमन की सवारी पहुँची, वहाँ-वहाँ लाखों की संख्या में जनता ने उन्हें काले झंडे दिखाये और 'साइमन लौट जाओ' 'साइमन गो बैक' के नारे मानो बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर थे। उसी विरोध-प्रदर्शन में, लखनऊ में पं० जवाहरलाल नेहरू एवं पं० गोविन्दवल्लभ पन्त पर लाठियाँ बरसायी गयीं, और लाहौर में सण्डर्स की आज्ञा से लाला लाजपतराय पर; बड़ी नृशंसतापूर्वक, लाठियों का प्रहार किया गया। लालाजी ने आहतावस्था में कहा था—"मेरे ऊपर की गयी लाठियों की एक-एक चोट ब्रिटिश सरकार के कफन की कील होगी।" लाला लाजपतराय फिर उठ न सके और १७ नवम्बर, १६२८ को उनका देहावसान हो गया। यह पंजाब के ऊपर एक बहुत बड़ा आघात था, जिसने नवयुवकों का खून खौला दिया और वे सारे देश में आतंकवादी संगठन करने लगे।

लाला जी की मृत्यु के ठीक एक माह पश्चात् १७ दिसम्बर १६२८ को क्रान्तिकारी सर्वश्री भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, जयगोपाल तथा शिवराम गुरु पुलिस के बड़े दफ्तर के निकट पहुँचे। शाम के चार बज रहे थे। सण्डर्स हेड कान्सटेबिल चनन सिंह के साथ अपने दफ्तर से बाहर आ रहे थे। ज्यों ही वे मोटर सायकिल पर सवार हुए कि उन्हें गोली लगी और वे मोटर सायकिल के साथ गिर पड़े। उनका एक पैर मोटर सायकिल के नीचे था और उन पर फिर गोली दागकर उनका काम तमाम कर दिया गया। अब यहाँ से सरदार भगत सिंह रफू चक्कर हुए, परन्तु पुलिस को पूरा सन्देह था कि इस कार्य में भगत सिंह का हाथ है।

दिल्ली में केन्द्रीय असेम्बली की बैठक हो रही थी। पुरानी व्यवस्थापिका सभा के जीवन में एक बहुत ही महत्वपूर्ण दिवस था। सभा के स्पीकर श्री विट्ठल भाई पटेल एक बहुत ही

महत्वपूर्ण निर्णय देने वाले थे। गैलरी खचाखच भरी हुयी थी। ज्यों ही स्पीकर खड़े होकर अपना निर्णय देने वाले थे कि पंडित ब्रजलाल नेहरू ने कहा—"अब श्री पटेल अपना बम का गोला छोड़ने जा रहे हैं।" अचानक जोरों की एक आवाज सुनायी पड़ी, पुनः दूसरी। सभा-भवन धुएँ से व्याप्त हो गया और फिर गोलियाँ छोड़ी गयीं। सभा में शोर-गुल मच गया और तत्काल सभी लोग तितर-बितर हो गये। कुछ ही क्षणों में जब कोलाहल से परिपूर्ण भवन श्मशान-सा, सुनसान हो गया। बम फेंकने वाले सरदार भगत सिंह तथा बटुकेश्वर दत्त भी सहज ही वहाँ से भाग सकते थे, परन्तु वे लोग वहीं खड़े-खड़े गिरफ्तार हो गये। गिरफ्तार होते समय असेम्बली-भवन 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे से गूँज उठा। याद रहे कि यह नारा पहली बार सरदार भगत सिंह के मुँह से यहीं निकला था। थोड़ी देर बाद वे दोनों वीर साथी जेल की चहारदीवारी के भीतर बन्द थे, अलग-अलग कोठरियों में, जहाँ उन्हें डराया-धमकाया गया, प्रलोभन दिये गये, लेकिन वे बहकावे में आने वाले नहीं थे।

अब उन पर नियमित रूप से मुकदमा चलने लगा। मुकदमे की सुनवाई दिल्ली-जेल के भीतर, दफ्तर में की गयी और दर्शकों पर प्रतिबन्ध था। परन्तु सरदार भगत सिंह इस पक्ष में नहीं थे कि उनके मुकदमे की पैरवी की जाय। इनके पिता ने प्रार्थनापत्र में लिखा था कि सरदार पर लगाये गये आरोप सर्वथा निराधार हैं और उन्हें प्रतिवाद का पूरा अवसर मिलना चाहिए। ये बातें सरदार को पसन्द नहीं आयीं और उन्होंने जेल से एक पत्र प्रकाशित कराया :—

"मैं यह जान कर आश्चर्यचकित हो गया कि आपने मेरे बचाव के सम्बन्ध में एक प्रार्थना-पत्र भेजा है। यह समाचार

मेरे लिए ऐसी असह्य चोट के सदृश्य है जिसे मैं शान्तिपूर्वक सहन नहीं कर सकता। पिता के नाते मेरे प्रति आपके हृदय में जो भाव और ममता होगी, उस पर ध्यान रखते हुए भी मैं न समझ सका कि आपने किस अधिकार से, मुझसे पूछे बगैर, यह कार्य किया।"

सरदार पर केवल असेम्बली बमकांड का केस नहीं था, उन पर सैंडर्स हत्याकांड, लाहौर षड्यंत्र केस आदि अनेक अपराधों का आरोप किया गया था।

इजलास पर दोनों ओर से गरमागरम बहस हो रही थी। सरकारी वकील की किसी बात पर भगतसिंह को हँसी आ गयी। वकील साहब ने न्यायाधीश से शिकायत की। इस पर भगतसिंह ने उत्तर देते हुए पुनः हँसकर कहा—"मुझे ईश्वर ने हँसने के लिये ही पैदा किया है। मैं हँसता आया हूँ, सारा जीवन हँसते हुए व्यतीत किया और हँसता रहूँगा। आज अदालत में हँस रहा हूँ। ईश्वर ने चाहा तो फाँसी के तख्ते पर हँसूँगा, रोने के लिए तो आप वकील साहब पैदा हुए हैं। आप इस समय मेरे हँसने की शिकायत अदालत से कर रहे हैं। परन्तु जब मैं फाँसी के तख्ते पर हँसते हुए रस्सियों को चूम लूँगा, तब किस अदालत से शिकायत करेंगे? यदि आपको हँसना अच्छा नहीं लगता, तो कृपया अपनी आँखें बन्द कर लें।"

७ अक्टूबर सन् १९३० को मुकदमे का फैसला सुना दिया गया। सर्वश्री भगतसिंह को उनके दो अन्य साथियों—श्री सुखदेव और राजगुरू—सहित फाँसी की सजा दी गयी। मृत्यु-दण्ड की बात सुनकर सरदार का खून खौल उठा। उन्होंने कहा—"जब हम राजबन्दी हैं तब फाँसी की सजा देना हमारा

अपमान करने के समान है, अतः हमें गोली से उड़ा दिया जाय।

सरदार की फाँसी की सजा की सूचना पा सारे देश में कोहराम-सा मच गया। चारों ओर सभाएँ हुईं, जुलूस आदि निकले। कई जगह तो रेलें-बन्द हो गयीं। 'भगतसिंह जिन्दाबाद' के नारे से सारा देश गूँज उठा। परन्तु भगतसिंह पर इसका तनिक भी प्रभाव न पड़ा।

एक दिन इनके छोटे भाई जेल में भेंट करने गये थे। उनकी आँखों में आँसू उमड़े हुए थे, जिसे सरदार ने सहज ही देख लिया। उनके चले जाने के पश्चात् इन्होंने एक पत्र लिखा। पत्र यों था :—

"अजीज कुलतार,

आज तुम्हारी आँखों में आँसू देखकर बहुत-बहुत रंज हुआ। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था। तुम्हारे आँसू मुझसे बर्दाश्त नहीं होते। हिम्मत करो। अच्छी तरह पढ़ना-लिखना और सेहत का ख्याल रखना। हौसला रखना, और क्या कहूँ। 'खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करते हैं। हौसले से रहना। नमस्ते!"

एक-एक करके वह दिन भी आ गया जब फाँसी दी जाने वाली थी, परन्तु उन्हें कोई सूचना नहीं थी। नियमों का उल्लंघन करके ५—६ बजे सुबह के बदले २३ मार्च सन् १९३१ को ७॥ बजे शाम को वे अपने दोनों साथियों सहित फाँसी के तख्ते पर झुला दिये गये। मातृभूमि के लिये प्राणों की आहुति देने वाले इन तीनों वीरों ने फाँसी की रस्सी को सहर्ष चूम लिया और 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए सहर्ष मृत्यु का आलिंगन किया।

अभी भी सरकार का क्रोध शान्त नहीं हुआ। उसने

हृदयहीनता की पराकाष्ठा कर दी और उन देश-भक्तों की लाशें उनके सगे सम्बन्धियों तक को नहीं दी गयीं, बल्कि लारियों में भरकर लाहौर से ४० मील दूर, सतलज नदी के किनारे ले जाकर, चुपचाप मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी और सतलज की मँझधार में डलवा दिया, मानो उससे भी क्रान्ति का प्रादुर्भाव होता था। फिर भी लाश के कुछ अधजले अवशेषों को लेकर लाहौर में अस्थियों का जुलूस निकाला गया, जिससे नर-नारियों ने आँसू बहाते हुए अपने कर्मठ, सहृदय एवं भावुक लाड़लों को श्रद्धांजलि अर्पित की।

'इन्कलाब जिन्दाबाद'

———

अमर शहीद

अभी बचपन ने आँखें खोली थीं। वीर बालक राजनारायण गाँव के ही स्कूल में पढ़ता था। हाल ही की सरदार भगतसिंह की फाँसी ने उस पर अमिट छाप छोड़ी थी और उसके मानस में आत्म-बलिदान के बीज अंकुरित हो रहे थे। वह आत्म-सम्मान का हनन तो सहन नहीं कर सकता था, भाई-बहन के लाड़-प्यार के कारण उसका मस्तिष्क सातवें आसमान पर रहता था। उसकी रुचि बचपन से ही मारपीट की तरफ अधिक थी। अभिभावकों ने उसके इस कार्य को प्रोत्साहित किया। वे देखते थे कि इस पर रोक लगाने से इसका विकास-पथ रुद्ध हो जायगा। लोगों ने उसकी बाल-सुलभ उद्दण्डता को रोकने के साथ ही उसे सदा हिम्मत दिलायी और हर प्रकार से उत्तेजित किया। यदि कोई उलाहना लेकर जाता तो वे डाँटने के बदले चुप हो जाते और मन ही मन कहते—'हमें इसे शेर बनाना है।' वे तो देखते थे कि बालक निडर एवं स्वतन्त्रता-प्रिय है, और यह सदा आत्म-बलिदान के लिये प्रस्तुत है।

आखिर १९३० की असहयोग-आन्दोलन की आँधी उठी और उस आँधी के झकोर ने वीर बालक राजनारायण को भी झकझोर दिया। वह उन दिनों खीरी-लखीमपुर के भीखमपुर नामक अपने गाँव की पाठशाला में पढ़ता था। उसने राष्ट्रीय पताका अपने कठोर हाथों में ली और आगे बढ़ा। भला तत्कालीन पाठशालाओं के अध्यापक उसकी इस उद्दण्डता को कैसे सहन करते? फलस्वरूप उसे बेंत की सजा भुगतनी पड़ी, और उसने स्कूल छोड़ निकट के ही दूसरे मिडिल स्कूल में नाम लिखवाया।

वह आग जो राजनारायण के हृदय में जली थी, सहज शान्त होने वाली नहीं थी। तत्कालीन चेतना ने उसे सजीव कर दिया और उसने कांग्रेसी छात्रों की एक टोली स्थापित की। परन्तु सरकार द्वारा स्थापित अमन-सभा का भी काफी प्रचार हो रहा था। जगह-जगह सभाएँ होती थीं और सरकार की प्रशंसा के गीत गाये जाते थे। भला क्रान्तिकारी राजनारायण इसे कब सहन करता! उसने साफ अस्वीकार कर दिया प्रशंसा के गीत गाना और कहा—"हम केवल वीर भगतसिंह का ही गीत गा सकते हैं।" फल यह हुआ कि उसे इस स्कूल को छोड़ना पड़ा। परन्तु उसकी प्रवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वीर बालक अपने बड़े भाई का नेतृत्व पा कर विकास पाने लगा।

सन् १६४१ में एक राजद्रोहात्मक भाषण देने के अपराध में उसे एक वर्ष का कठिन कारावास भुगतना पड़ा और सजा काट-कर लौटते ही उसे अपने पिता के शव का दर्शन हुआ। यह वज्र प्रहार उसे सहना था और उसने सहा।

(२)

गत द्वितीय महायुद्ध चल रहा था। भारतीय युवक सेना में भर्ती किये जा रह थे। वे सात समुन्दर पार ब्रिटिश सरकार के पक्ष में लड़ रहे थे। उसी समय भारतीय समस्या का समाधान करने के लिये ब्रिटिश मंत्रिमंडल ने कुछ प्रस्ताव देकर सर स्ट्रैफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। परन्तु ब्रिटिश सरकार के प्रस्तावों के खोखलापन ने सबको चौंका दिया। अब काँग्रेस और गाँधीजी को भी विश्वास हो गया कि जब तक भारत से ब्रिटिश सरकार का शासन नहीं उठ जाता, तब तक भारत की समस्या का समा-धान असम्भव ही है। युद्ध के अन्त तक स्वतन्त्रता की प्रतीक्षा करने का अर्थ भारत को उस विशाल नाटक का, जो संसार

के रंगमंच पर नृशंसतापूर्वक खेला जा रहा था, निष्क्रिय दर्शकमात्र बनाना था। गाँधी जी गम्भीर चिन्तन के बाद इस परिणाम पर पहुँचे कि युद्ध में वीरतापूर्वक भाग लेने या बाह्य आक्रमण से भारत की रक्षा करने के लिये भारत की स्वतन्त्रता आवश्यक है। अब भारत और ब्रिटेन का हित इसी में है कि अँग्रेज भारत छोड़कर चले जायँ। इसके लिये कांग्रेस के सामने इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं था कि वह कुछ करे। अब कोई-न-कोई कदम उठाना अनिवार्य था, और वह कदम उठा कर रहा।

आठ अगस्त १९४२ की रात को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में यह प्रस्ताव पास हुआ—"स्वतन्त्रता के अलावा किसी शर्त पर हमारा सहयोग नहीं हो सकता।" इसी समय महात्माजी ने बोलते हुये कार्यक्रम का खाका खींचा—"अब क्या करना है वह सुना दूँ। मैं तो एक ही चीज लेने जा रहा हूँ—आजादी। नहीं देना है, तो कत्ल करें। मैं वह गाँधी नहीं, जो बीच में कुछ चीज लेकर आ जाय। आपको तो मैं एक मन्त्र देता हूँ—'करो या मरो ?' जेल को भूल जायँ। आप सुबह-शाम यही कहें कि खाता हूँ, पीता हूँ, साँस लेता हूँ, तो गुलामी की जंजीर तोड़ने के लिए। जो मरना जानते हैं, उन्होंने जीने की कला जानी है। आज तय करें कि आजादी लेनी है। नहीं मिलेगी तो मरेंगे। आजादी डरपोकों के लिये नहीं है। जिनमें 'करने और मरने' की ताकत है वे ही जिन्दा रह सकते हैं।"

रात को साढ़े दस बज चुके थे। काँग्रेस कमेटी की बैठक समाप्त हुई और कार्य-समिति के सभी सदस्य अपने दिल में अस्पष्ट और अनिश्चित प्रोग्राम लेकर अपने-अपने निवास-स्थान पर गये, परन्तु दूसरे दिन सुबह, सूर्योदय से पूर्व ही, बम्बई की

पुलिस उन मकानों के दरवाजे खटखटाती दिखायी दी जिनमें गाँधी जी तथा कार्य-समिति के अन्य सदस्य ठहरे हुए थे। उन्हें गिरफ्तारी के वारण्ट दिखाये गये, और कम-से-कम समय में तैयार होने को कहा गया, ताकि वहाँ अवांछनीय भीड़ न इकट्ठी हो जाय और कोई घटना न घटे।

यह समाचार बिजली-सा प्रसार पा गया कि गांधी जी कांग्रेस की कार्य समिति के सभी सदस्यों के साथ गिरफ्तार कर लिए गये और जेल के सीखचों में बन्द कर दिये गये। सरकार का यह कार्य खुली बगावत करने का आमन्त्रण था, और शहरों तथा कस्बों की जनता विद्रोह की भावना से आक्रान्त हो गयी। विद्रोह का स्वर पहले ही समस्त वातावरण में व्याप्त था। 'करो या मरो' का अमर सन्देश था। उन्होंने अपनी सहजजात बुद्धि से अर्थ लगाया और सर्वप्रथम सर्वत्र हड़ताल प्रारम्भ हो गयी। परन्तु यह हड़ताल एक दिन में समाप्त होने वाली नहीं थी। यह हड़ताल लगातार कई दिनों तक चलती रही, और प्रत्येक शहर तथा कस्बे में प्रदर्शन तथा सभाएँ हुईं, जिन्हें सरकार ने अपने फौजी साधनों की सहायता से दबाने की चेष्टा की। परन्तु स्वतन्त्रता के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाली जनता के समक्ष वह नहीं टिक सकी। साधारण जनता की कानून भंग करने की प्रवृत्ति हो गयी थी और कुछ समय के लिए ऐसा ज्ञात होता था कि सारी पुलिस को लकवा मार गया हो? अपार जन-समूह ने सेक्रेटेरिएट, अदालतों, इमारतों तथा अन्य सरकारी इमारतों पर तिरंगे झंडे फहरा दिये तथा कई जिलों में शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। कई स्थलों पर प्रदर्शन के समय ही अश्रुगैस का प्रयोग हुआ तथा लाठी चार्ज और गोली-काण्ड हुए, जिनका भारतीय जनता ने बड़े उत्साह और साहस से सामना किया।

आखिर इस क्रान्ति की लपट राजनारायण के गाँव भी पहुँची जिसका नेतृत्व अभी हाल ही में पिता की अन्तिम क्रिया से मुक्ति पाये हुए उस वीर युवक को ही करना पड़ा। उसके एक संकेत में गाँव के सारे युवक एकत्र हो गये। उसने नवयुवकों को धार्मिक व्याख्यान देकर उनमें वीरता का संचार किया। सभी युवक उसके सिंहनाद को सुनकर वीरता के मद से झूम उठे और उन लोगों ने हृदय से प्रतिज्ञा की "जब तक हम लोग अन्य जिलों की भाँति अपने जिले पर पूर्ण अधिकार न कर लें, तब तक घर न लौटेंगे।"

लगभग तीन सौ नवयुवकों ने ऐसी प्रतिज्ञा की और समुद्र-मुखी सरिता की भाँति वे अबाध गति से बाहर बढ़ चले! इन लोगों ने लगभग चार घन्टे के अन्दर अपने पड़ोस के सारे जमीन्दारों और सरकार के खैरख्वाहों की बन्दूकें छीन लीं। केवल एक बन्दूक उस इलाके में एक जमींदार के पास बच गयी, जिसने इन लोगों को देखते ही अपनी बन्दूक ऊपर सीधी कर ली। जमीन्दार की गलती से ही जमीन्दार पर धाँय-धाँय दो गोलियाँ दग गयीं और वह वहीं ढेर हो गया।

अब क्या! इस घटना के चार दिनों बाद गोरी पलटन ने गाँव घेर लिया। गाँव में राजनारायण आदि युवक नहीं मिले, परन्तु ग्रामवासियों को कई प्रकार से अपमानित किया गया। उनके मकान खुदवा डाले गये, उनमें हल चलाये गये तथा उनमें गाँव के भले आदमी बैलों की जगह, हलों में जोते गये। सारा गाँव तबाह हो गया। परन्तु राजनारायण का कहीं पता न मिला। वे थे तो फरार, परन्तु यह जानकर आश्चर्य होगा कि फरारी की दशा में भी वे चुप नहीं थे और उसके परिणामस्वरूप दो बार दूसरे नामों से सजा भी काटी। किसी प्रकार घूमते-घूमते ये मेरठ पहुँचे, वहाँ अपने एक मित्र पर अपना असली परिचय व्यक्त करने

के फलस्वरूप अप्रैल सन् १९४४ में ये पुलिस के चंगुल में फँस गये और पुलिस की हथकड़ियों में जकड़े जेल लाये गये। दो मास के अन्दर इनके भाग्य का फैसला हो गया। २७ जून को लखीमपुर के दौरा जज ने इन्हें फाँसी की सजा सुनाई जो अपील तथा दया की प्रार्थना के बावजूद भी बहाल रही। जिस समय फाँसी की सजा सुनाई गयी, उस समय युवक राजनारायण के मुख से 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'नौकरशाही का नाश हो', 'अत्याचारी शासन का नाश हो' आदि निस्सरित नारों से कचहरी गूँज उठी।

सजा हो जाने के तीन दिनों बाद उन्हें लखनऊ जिला जेल लाया गया। अब वे फाँसी के कैदी थे, जिनकी जान अधिकारियों के लिए बड़ी अमूल्य होती है। उन पर चौबीसों घंटे पहरा रहने लगा। सोते-जागते उठते-बैठते उन पर कड़ी दृष्टि रहने लगी। परन्तु अमर युवक के मुखड़े पर चिन्ता की रेखा भी नहीं खिची थी, वह सदा प्रसन्न रहता था और फाँसी से पूर्व उसका वजन भी बढ़ा।

फाँसी से एक दिन पूर्व, नौ दिसम्बर को राजनारायण की पत्नी अपने प्यारे बच्चों को लेकर, सदा के लिये बिदा होते हुए अमर शहीद, अपने पति के दर्शन को आई हुई थी। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। परन्तु राजनारायण ने अपने होठों पर मुस्कराहट ला कर कहा—"तुमको इस बात का गर्व होना चाहिए कि तुम्हारा पति एक शुभ कार्य में अपनी जान दे रहा है। हम देश के लिए मर रहे हैं, फिर पैदा होंगे और फिर मरेंगे। मेरे बाद तुमसे जो कुछ भी हो सके, देश का काम करना। अगर तुम चाहो तो वर्धा चली जाओ। वहाँ देश-सेवा को ही अपने जीवन का उद्देश्य समझ कर रहना।"

९ दिसम्बर की नृशंस रात्रि! लोग कहते हैं कि कौन जानता है कि मृत्यु कब आयेगी। परन्तु वहाँ सारा तर्क गलत था।

कई महीने पूर्व से निश्चित था कि १० दिसम्बर को सुबह को राजनारायण फाँसी पर लटका दिये जायेंगे और वही घड़ी आ ही गयी। हथकड़ियों में जकड़े राजनारायण फाँसी के तख्ते पर लाये गये। फाँसी के तख्ते पर कूदकर चढ़ गये! उस समय उनके चेहरे पर शिकन न आयी और उनके मुखमंडल पर पहले से भी दिव्य प्रभा भासित हो रही थी। अपने परिचितों से उन्होंने हँसते हुए कहा—"हम जीवन भर हँसते रहे। अन्तिम समय भी हँसते हुये ही जाना चाहते हैं। यदि हम अपने परिचितों को यहाँ से हँसता हुआ न भेज सके, तो हम अपनी तपस्या में कमी समझेंगे।"

देश की शोषित जनता को उनका यह संदेश था "भारत के प्रत्येक नवयुवक का कर्तव्य है कि वह देश की स्वतन्त्रता के लिये, सर्वस्व न्योछावर कर दे। आज मैं आप लोगों से अलग हो रहा हूँ, परन्तु मेरा अन्तिम संदेश यह है कि आगामी जनक्रांति में सभी लोग जी जान से भाग लें और साम्राज्यवादी ही नहीं, उसके समर्थकों को भी समाप्त कर दें।"

इन अन्तिम शब्दों को कहते हुए २५ वर्ष की भरी हुई मचलती जवानी में ही वह कर्मवीर, माँ के बन्धन मुक्त करने के पूर्व ही, अपना बन्धन तोड़ गया और हँसते-हँसते फाँसी की रस्सियों को गलहार बना लिया। फाँसी पर झूलने के पूर्व तक 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा वायुमंडल को मुखरित करता रहा और वही उनका अन्तिम नारा था। यही सच्चे देश-प्रेम और उबलते हुए रक्त की पहचान है। उनका यह बलिदान अनुपम था।

अपने अल्प काल के जीवन में ही राजनारायण ने युग-युग पर विजय प्राप्त की और भारत की आकुल जवानी आज उनके पद-चिह्नों का अनुसरण करते फूली नहीं समाती। मातृ-भूमि के अमर शहीद! तुम्हें शतशः नमः।
